शवसाधन

लेखक

बलदेवप्रसाद मिश्र

[मू० २=)

प्रथमावृत्ति]

शवसाधन

विषय-सूची

जयापीड़

दिगन्तविश्रान्तकीर्त्ति महाराज ललितादित्यके पौत्र जयापीड़को सिंहासनारूढ़ हुए तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

उन दिनों काश्मीर विद्यापीठ था। शैवागम, व्याकरण, तन्त्र, कामशास्त्र और साहित्यका अध्ययन करने भारतके विद्वान् वहां जाते थे। काश्मीरका विद्वत्समाज जबतक किसी काव्यकी श्रेष्ठताकी घोषणा न करता था, तबतक उसका आदर न होता था। काश्मीरक कवियोंकी रसनापर सरस्वती नृत्य करती थीं; उनके रस-पिच्छिल कविता-पथपर वह मन्थर गतिसे चलती थीं।

उन दिनों काश्मीर संगीतकी वासभूमि था। संगीतकी अधिष्ठात्री देवी वहांकी गणिकाओंमें अनेकधा विभक्त हो गयी थी। उन दिनों काश्मीरके निवासी रूपके आश्रय थे।

महाराज जयापीड़ रति-रहित कामदेवसे तुलित होते थे। वे सरस्वतीके पुरुषावतार कहे जाते थे। वे लक्ष्मीके कारागार थे। कीर्त्तिसे उन्हें द्वेष था, उसे उन्होंने निकाल दिया था। महाराज जयापीड़के भयसे ही मानों उसे कोई आश्रय न देता था; वह दसों दिशाओंमें भटक रही थी।

अनेक महिलाएं काश्मीर-भूमिकी सपत्नी बनना चाहती थीं। उनके कज्जल-लिप्त, उच्छ्‌वास-भ्रष्ट पत्र महाराज जयापीड़के दीपकी शिखाको अर्पित हो चुके थे। पंचशरके षष्ठबाण—गणिकाएँ—भी व्यर्थ सिद्ध हो चुके थे। महामन्त्री इस मृगकी वागुराके अन्वेषणमें व्यग्र थे।

एकाकी जाऊंगा। कहीं कोई प्रबन्ध न करना होगा और मेरी यात्राका समाचार यथासाध्य गुप्त रखना होगा।

महामन्त्री बोले—आपकी यात्रा गुप्त कैसे रहेगी ? क्या चन्द्रको दीपकसे दिखलाना पड़ता है ? और आप एकाकी नहीं जा सकते।

महाराजने कहा—एकाकी न रहूंगा। खड्ग मेरे साथ रहेगा। आपका आशीर्वाद मेरा प्रधान रक्षक होगा।

महामन्त्री रुद्ध कण्ठसे बोले—महाराज! स्वनामधन्य ललितादित्य मेरे मित्र थे। उनकी सम्पत्तिको मैंने अपनी समझकर रक्षा की। आपके पिताकी लक्ष्मीका मैंने न्यास (धरोहर) समझकर पालन किया; अब उसे आप संभालिये, मुझे अवकाश दीजिये। मेरी वृद्धावस्थाको नरक बनानेका उपक्रम न कीजिये।

महाराज बोले—आर्य! स्नेह आपको विचलित कर रहा है। मुझे संसारका कुछ अनुभव कर लेने दीजिये। तब यह भार मुझपर न्यस्त कीजियेगा। अन्यथा, यह भार मुझे ले डूबेगा।

महामन्त्रीने कुछ देर चुप रहकर कहा—महाराज! देशाटनमें अनेक विपत्तियां होती हैं। ग्रीष्म, वर्षा और शीत सिरपर रहते हैं। धूलि-दिग्ध, कंटकाकीर्ण, निम्नोन्नत भूमिपर चलना पड़ता है। भूमिशायी होना पड़ता है, इष्टकाओं (ईंट) का उपधान (तकिया) करना होता है। भयंकर अरण्योंको पार करना पड़ता है। आवर्त्तमयी नदियोंका अतिक्रमण करना पड़ता है; हिंस्र जन्तुओंका भय होता है। ठक (ठग), तस्कर, अग्निकाण्डका भय होता है। देशोपप्लवकी आशंका रहती है। अपरिचितोंमें वास करना पड़ता है। गृहस्थ लोग अपरिचितोंको शरण नहीं देते। देते भी हैं तो गोशाला या बाहरी अलिन्दमें शयन करना पड़ता है। गृहिणियोंकी भर्त्सना सहन करनी पड़ती है। क्षुधा और पिपासा व्याकुल करती हैं। समयपर और अनुकूल भोजन नहीं मिलता। रोगों और उपदेवताओंका

आज्ञानुसार ही इन्द्रप्रस्थतक जाऊंगा और वहां दूसरे दलको उनके साथ करके लौट आऊंगा.......संख्या १०२"

१५ दिनों बाद महामन्त्री दूसरा पत्र पढ़ रहे थे—

......."हम ४०० सार्थवाह (काफिला बनाकर यात्रा करनेवाले व्यापारी) आज इन्द्रप्रस्थसे काशी जा रहे हैं। अभियुक्त हमारे साथ है। अभियुक्तने इन्द्रप्रस्थके सब प्रसिद्ध स्थान देखे और नगरश्रेष्ठीसे मिला। ....संख्या १११"

एक मास बाद—

".......इन्द्रप्रस्थके सार्थवाह अपना पण्य (बेचनेकी वस्तु) बेचकर लौट गये। तान्त्रिकजी पुष्पपुर (पटना) जा रहे हैं। हम लोग शाम्बरी (इन्द्रजाल दिखलानेवाले) हैं। तान्त्रिकजीके साथ जा रहे हैं।..संख्या २५६"

उसी दिन शाम्बरी लोगोंके साथ जानेवाले तान्त्रिकने अपने स्मृति-पत्रमें (डायरी) यह लिखा—

".......काशी विचित्र है। तान्त्रिक रूपमें सर्वत्र विचरण किया। यहांके वेदपाठी अष्ट विकृतियोंमें निष्णात हैं। व्याकरण उतना उन्नत नहीं। कई सन्यासी वेदान्तके अच्छे पण्डित हैं। तन्त्रके नामपर कुछ लोग उदर-पोषण कर रहे हैं। मीमांसाकी दुर्दशा है। वैदिक मन्त्रार्थ नहीं जानते। वे उन गर्दभोंके समान हैं जिनपर चन्दन लदा हो।....ज्योतिष भी हीनावस्थामें है। उत्सर्गापवादकी ओर किसीका ध्यान नहीं।....वारांगनाएं गायनमें दक्ष हैं, नृत्यमें उतनी पटु नहीं; रूप भी अलौकिक नहीं।..... मार्दंगिकों (मृदंग बजानेवालों) के हाथ मधुर नहीं, ताल-ज्ञान अच्छा है।...वस्त्र, सुगन्ध-द्रव्य, धातु-पात्र आदिका व्यवसाय उन्नत है।...."

दो मास बाद महामन्त्रीको पत्र मिला—

".......तान्त्रिकजी तीर्थयात्रियोंके साथ भगवान् जगन्नाथका दर्शन करने चले हैं।.......संख्या ३१७"

तीन मास बाद—

"........तान्त्रिकजी हमसे जगन्नाथपुरीसे पृथक् हो गये। वे पौण्ड्र-वर्धन होते हुए गौड़ जा रहे हैं। उनके साथ अब देवाजीवी (देवताओंकी मूर्तियां दिखाकर उदर-पोषण करनेवाले) हैं। उस दलमें तान्त्रिकजी वैद्य हो गये हैं।........संख्या ३१७"

और एक मास बाद—

"........गौड़से प्रणाम स्वीकृत हो। वैद्यजी अभी साथ हैं। कल वे पृथक् होंगे। उन्होंने एक गृह लिया है। हममेंसे आठ व्यक्तियोंको वैतनिक सेवक होनेका सौभाग्य मिला है। संख्या ६३२।"

उसी दिन वैद्यजीका स्मृतिपत्र—

"........श्रेष्ठीसे कल मिला। उसने चार सहस्र स्वर्णमुद्राएं दीं। इतनी ही मैंने मांगी थी। उसने कहा कि मैं तुम्हें नहीं पहचानता, अभि-ज्ञान (चिह्न) मेरे लिए अलम् है। यही मैं चाहता भी था।..निवासियोंकी प्रकृति मधुर है। भूमि शस्य-श्यामला। कादम्ब अति उत्तम। स्त्रियोंके लोचन और केश दर्शनीय; दन्तपंक्ति मोहक।....निवासियोंमें कलाओंके प्रति स्वभावतः आसक्ति। विदेशियोंसे व्यवहार सहृदयतापूर्ण।....गृह ले लिया है। अन्तिम साथी देवाजीवी थे—उन्हींमेंसे आठको भृत्य रख लिया है। सब विश्वस्त और अनुरक्त हैं। श्रेष्ठी उन्हें जानता है—उनका प्रतिभू (जमानतदार) होनेको तत्पर है।.... मार्गमें कहीं कष्ट नहीं हुआ। महामन्त्रीजी व्यर्थ व्यग्र होते थे।....कल स्थानीय कार्त्तिकेय मन्दिरमें नगरकी सर्वश्रेष्ठ गणिका कमलाका नृत्य है। यहांके नरेश जयन्त भी पधारेंगे। मन्दिर उन्हींका है। भव्य है।........"

महाराज जयापीड़को मन्दिरके बाहर ही ज्ञात हो गया कि नृत्य हो रहा है—मृदंग बज रहा था। मन्दिरके द्वारतक दर्शक खड़े थे। वे सबसे पीछे खड़े हो गये। आगेके मनुष्यने पीछे देखा और विस्मित होकर उन्हें मार्ग दे दिया। इस प्रकार वे दालान पारकर उस चबूतरेतक पहुंच गये जिसपर महाराज जयन्त और उनके सामन्त विराजमान थे और

नृत्य हो रहा था; चबूतरेपर चारों ओर कुछ दूरतक लोग खड़े थे। एक दर्शकने आग्रहसे महाराजको ऊपर आनेका संकेत किया। वे ऊपर चढ़ गये और थोड़ी ही देरमें सबसे आगेवाली पंक्तिमें हो गये। उनके आगे ही महाराज जयन्त थे। दूसरी ओर महिलाएं थीं।

ऊंचे दीपाधारोंमें स्थूल वर्त्तिकाएं जल रही थीं। तैल, अगुरु और चन्दनसे वासित था; मन्दिर भीनी सुगन्धसे पूर्ण था।

मध्यमें भारी दरी बिछी थी। उसपर कमलाका नृत्य हो रहा था।

महाराज जयापीड़ कमलाको देखने लगे। ज्ञात होता था कि चन्द्रकी लक्ष्मी शरीर धारणकर भूलोकमें आ गयी थी। अवयव-संस्थान अति मनोहर और उचित अनुपातमें थे, केवल मध्यदेश अधिक कृश था। वह शाटी (साड़ी) को कच्छ (काछा) देकर धारण किये हुए थी जिससे नृत्यमें मध्य और नितम्बोंकी लचक और दलक पूर्णतया स्पष्ट होती थी। वह अर्ध कूर्पासक (चोली) पहने थी। उसके मस्तकपर कस्तूरी-बिन्दु था। वह मध्यदेशमें एक उत्तरीय बांधे हुए थी जिसकी ग्रन्थि नाभिके निकट थी और दोनों छोर एक-एक हाथ लकट रहे थे। वह मोचक (कर्णफूल), उच्चितक (कलाईका एक आभूषण) और दोनों कन्धोंपर मोतीके वैकक्षक (यज्ञोपवीतकी तरह पहनी माला) पहने थी। उसके पैरोंमें घुंघुरू थे। उसकी वेणी गुल्फोंसे कुछ ऊपरतक लटक रही थी। उसके दोनों ओर दो मार्दंगिक थे।

जब जयापीड़ आकर खड़े हुए, कमला मत्तस्खलितक नामक अंगहार दिखलाकर 'मदविलसित' अंगहार दिखलानेवाली ही थी कि उसकी दृष्टि इधर पड़ी। कमला स्थिर-सी हुई, उसके नेत्र जयापीड़के नेत्रोंसे मिले। जयापीड़को ज्ञात हुआ कि एक सिहरन आंखोंमें उत्पन्न होकर क्षणभरमें पैरोंसे निकलकर भूमिमें समा गयी। उनके मस्तकपर पसीना हो आया और कर्णान्त जलने लगे।

उसी क्षण मार्दंगिकने तीसरी मात्रापर गम्भीर थाप दी। कमला चतुर्गुण गतिमें घूमकर ९वीं मात्रामें तालमें मिल गयी। उसने अंगहार

छोड़ दिया था, वह शृंगार रसमें भावोंका विनियोग दिखा रही थी। उसने फिर जयापीड़की ओर न देखा, पर महाराज जयन्तके सामन्त और महिलाएं इस विदेशीको साश्चर्य देख रही थीं।

कमलाकी दृष्टिमें मधुरता छा गयी। वह व्याकोशमध्या हुई, आंखोंके तारे स्मेर हुए, नयनोंमें आनन्द और अश्रु छलकने लगे। जयापीड़की श्वास-क्रिया क्षणभरके लिए रुक गयी। उन्होंने किसी गणिकामें रति-दृष्टिकी यह निपुणता, निपुणताकी यह पराकाष्ठा न देखी थी। घुँघुरू वोल रहे थे, उनकी थिरकपर जयापीड़का हृदय लोट रहा था।

इसके वाद कमला लयके काम दिखाने लगी। मात्राओंका क्रमतः, सरल, क्लिष्ट, सूक्ष्म और असम्भव-प्राय विभाजन होने लगा। किसी किसी दर्शकके मुखसे कभी-कभी अव्यक्त ध्वनि निकल जाती थी। जयापीड़ प्रस्तर-प्रतिमा हो गये थे।

डेढ़ प्रहरके वाद कमला समपर आकर जब रुकी, महाराज जयन्त उठ खड़े हुए। दर्शक कमलाकी प्रशंसामें शतमुख हो गये। कमलाकी दृष्टि वहां पड़ी जहां उसने कुछ कष्टसे, वहुत देरसे न देखा था। सहस्रों व्यक्ति थे, वह विदेशी न था।

● ● ● ●

दूसरे दिन प्रातःकाल दासीने कमलासे कहा—आर्ये, स्नान कर लीजिये।

कमला वोली—आज मैं देरमें स्नान करूंगी। पूजा व्राह्मणोंसे करा लेना।

चेटी कलाने आकर कहा—आर्ये, स्नान क्यों न करोगी?

कमला—शिरोवेदना है।

चेटीने मुस्कराकर कहा—मैंने वैद्यको वुलवाया है। वह तृतीय कक्षमें है।

कमला—हमारे वैद्य सव रोगोंमें क्वाथ देते हैं।

चेटी—मैंने नवीन वैद्य बुलवाया है।
कमला—तू अनुदिन धृष्ट होती जा रही है। अपरिचित वैद्यकी
धि मैं न खाऊंगी।
चेटीने मुस्कराकर पूछा—तो वैद्यको विदा करूं?
कमला—हां।
कलाने दासीको पुकारकर कहा—तृतीय कक्षमें वैद्यजी हैं। उन्हें
क्षिणा देकर विदा कर दे।
दासीने पूछा—वहां कई व्यक्ति हैं, वैद्यजी कौनसे हैं?
कला—कल मन्दिरमें जो विदेशी खड़ा था, वही।
कमला उठ खड़ी हुई। उसने चेटीका हाथ पकड़कर कहा—कला!
तूने कैसे जाना?
कला—आर्या किसपर अनुरक्त हैं, यह जानना भी कठिन है?
कमला—वह वैद्य हैं?
दासीने आकर वैद्यके जानेकी सूचना दी। कमलाने क्रुद्ध होकर कहा—
किसी सेवकको भेज! दौड़कर बुला लावे।
दासीने कलासे कहा—वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर गया। कह गया—
अब मैं कभी न आऊंगा।
दासी चली गयी। कमला बैठ गयी। उसकी आंखोंमें अश्रु भर
आये।
कलाने कहा—आर्ये, अविनय क्षमा हो। वे न आये थे।
कमला—दासीने कहा कि..........
कला—वह मेरी शिक्षा थी। तुम आश्वस्त होओ। उन्हें लाने विट
गया है।
कमलाने वलय उतारकर कलाको पहनाते हुए कहा—ब्राह्मणको
मना कर, मैं स्नान करने जाती हूं।
उसी समय महाराज जयन्तकी कन्या कल्याणी देवीसे उनकी सखी

अमलाने कहा—सखी ! कल तुम मन्दिरमें न गयीं, जातीं तो लोचन सफल हो जाते।

कल्याणीने कहा—उंह, बहुत बार कमलाको देखा है।

अमला—तुम ऐसी वस्तु देखतीं जिसे कमलाने भी साग्रह देखा।

कल्याणी—कोई नवीन मृग या पक्षी होगा।

अमला—नहीं, मनुष्य।

कल्याणी—कलतक गौड़का कोई पुरुष उसका मनोहरण न कर सका था।

अमला—वह विदेशी था, काश्मीरक।

कल्याणी—कुछ कुतूहल हुआ होगा उसे।

अमला—नहीं, उस काश्मीरकके रूपने कमलाके हृदयका स्पर्श किया। वह 'मदविलसित' दिखलाने जा रही थी। तभी उसकी दृष्टि उस काश्मीरकपर पड़ी और वह क्षुभित हो गयी। मार्दगिकने तीसरी मात्रापर गम्भीर थाप देकर उसे सचेत किया, तब वह अंगहार छोड़कर भावोंका विनियोग दिखलाने लगी।

कल्याणी—पुरुष सुन्दर था ?

अमला—तुम देखतीं तो विवाह न करनेका आग्रह दूर हो जाता।

कल्याणी—अच्छा !

अमला—कल तुम लोचन-फलसे वञ्चित हो गयीं।

कल्याणी—कभी नेत्रोंको सफल कर लूंगी।

(कल्याणी देवी हंसीं)

अमला—वह सम्भवतः चला गया हो। विदेशियोंका क्या ठिकाना ! देख लेतीं तो हंसना भूल जाता।

कल्याणी—देखती हूं, तुम आसक्त हो गयी हो !

अमलाने लज्जित होकर कहा—अपना मुख मैंने देखा है।

● ● ● ●

महाराज जयापीड़ विटके साथ कमलाके भवनके द्वारपर पहुंचे। प्रधान द्वारके स्तम्भोंमें कदली-वृक्ष वंधे थे। विचित्र वन्दनवारें वंधी थीं। द्वारकी देहलीके पास भूमिपर आटे और कुंकुमसे चित्रकारी की गयी थी और उसपर पुष्प पड़े थे। द्वारके दोनों ओर सजल घट थे जिनमें पंच-पल्लव थे। घटोंपर अपूर्व चित्रकारी थी।

वे भीतर प्रविष्ट हुए। भवन मध्यमें था। उसके चारों ओर शीतल-च्छाय वृक्ष थे। उनपर लताएं थीं। क्यारियोंमें फूलोंके पौधे थे। बीच-बीचमें छोटी-छोटी वेदियां (चबूतरे) थीं।

विटने विनयसे कहा—इधरसे श्रीमन्!

महाराज प्रथम प्रकोष्ठमें प्रविष्ट हुए। सात सोपानोंके बाद सम भूमि थी। अन्तिम सोपानपर चार द्वारपाल खड़े थे। उन्होंने इन दोनोंको झुककर प्रणाम किया। एक ओर उत्तम अश्व वंधे थे। उनसे कुछ दूर १२–१४ वानर शृंखलाओंमें वंधे उछल-कूद कर रहे थे। हस्तिपक (हाथी-वान) एक हाथीको अन्नके पिण्ड खिला रहा था। एक ओर मेष (मेढ़ा) की गर्दन मली जा रही थी।

महाराज द्वितीय कोष्ठमें प्रविष्ट हुए। एक कोनेमें वृषोंकी सींगोंपर तेल मला जा रहा था। एक ओर आसनोंपर बैठे नगरके कुछ युवक काम-शास्त्र पढ़ रहे थे, जिन्हें उनके अभिभावकोंने चतुरताकी शिक्षाके लिए यहां भेजा था।

तीसरे प्रकोष्ठमें पाशकपीठ (चौपड़का खाना) और सारियां (पासे) रखी थी। नगरकी कुछ गणिकाएं खेल रही थीं। ये भी शिक्षार्थ आयी थीं। वहां वृद्ध विट और दासियां ताम्बूल, पुष्पसार (इत्र), चित्र आदि लिए घूम रही थीं।

चतुर्थ प्रकोष्ठमें अनेक युवतियां मृदंगका अभ्यास कर रही थीं। कुछ युवक वंशी बजा रहे थे। कुछ लोग वीणा बजा रहे थे। कुछ नर्त्तकियां नृत्य सीख रही थीं। कुछ भाव बतानेका अभ्यास कर रही थीं।

पंचम प्रकोष्ठमें एक ओर महानस (रसोईघर) था। मिठाइयां बन रही थीं, लड्डू बांधे जा रहे थे, चाशनी तैयार की जा रही थी। बघार दिये जा रहे थे।

षष्ठ प्रकोष्ठमें एक ओर प्रसिद्ध चित्रकार कुछ युवकों और युवतियोंको शिक्षा दे रहे थे। एक ओर सोने-चांदीके आभूषण बन रहे थे, मीनाकारी हो रही थी, शंख छांटे जा रहे थे, प्रवाल घिसे जा रहे थे। एक ओर पुष्पसार् बनाये जा रहे थे। एक ओर ताम्बूल लग रहे थे। एक ओर चन्दन घिसा जा रहा था, मदिरा पी जा रही थी। कटाक्षोंसे देखा जा रहा था। हंसी सुन पड़ती थी। नगरके बहुतसे प्रसिद्ध धनी आसनोंपर बैठे सुख ले रहे थे।

सातवें प्रकोष्ठमें पारावत (कबूतर) क्रीड़ा कर रहे थे, शुक बोल रहे थे, सारिकाएं कलह कर रही थीं, तीतर लड़ाये जा रहे थे, मयूर नाच रहे थे, हंस घूम रहे थे।

आठवें प्रकोष्ठमें महाराज जयापीड़ने एक पर्यंकिका (छोटा पलंग) पर श्वेत वस्त्र धारण किये एक वृद्धाको बैठे देखा। तीन-चार दासियां पान, इत्र आदि लिये वहां खड़ी थीं।

महाराजने विटकी ओर देखा। विटने कहा—ये कमलाकी माता हैं।

नवां प्रकोष्ठ वाद्य-यन्त्रोंसे पूर्ण था।

दशम प्रकोष्ठमें चारों ओर पुरुषप्रमाण (आदमकद) शीशे लगे थे, गद्दा बिछा था। चौकीपर ताम्बूल, पुष्पसार आदि रखे थे। एक दासी द्वारपर खड़ी थी। उसने निवेदन किया—आर्या वृक्ष-वाटिकामें हैं, वहीं पधारें।

विट महाराज जयापीड़को लेकर वृक्ष-वाटिकाकी ओर चला। दशम प्रकोष्ठके एक द्वारसे एक लम्बा दालान पारकर ये लोग एक दूसरे द्वारपर पहुंचे। उसे खोलकर विट आगे बढ़ा। भवनके चारों ओरके वृक्षोंके बीचमें एक मार्ग था। सामने ही १५ हाथ ऊंची चहारदीवारी देख

पड़ती थी। ये लोग वहां पहुंचे। उसके द्वारपर चार सशस्त्र रक्षक थे। भीतर पांच कोसका उद्यान था। वीच-वीचमें कुंज-गृह, दोलाएं (झूले) वेदिकाएं और जलयन्त्र (फुहारे) थे। ठीक मध्यमें १५० हाथकी चतुष्कोण दीर्घिका (छोटा सरोवर) थी। उसमें सौगन्धिक, उत्पल, कोकनद आदि जातिके कमल खिले थे, जलपर पराग फैला था और हंस-हंसिनियां उसमें विचरण कर रही थीं। उद्यानके चारों कोणोंपर चार छोटे गृह थे। दीर्घिका में मध्य-दघ्न (कमरभर) जल था।

विटने महाराजको एक दोलापर वैठाया। उसपर एक पात्रमें ताम्बूल, एला, केसर थीं। महाराजको विटने ताम्बूलकी दो वीटिकाएं (वीड़े) दीं और कहा—आप यहां विराजें, मैं कमलाको सूचित करूं।

विटने कहा—कमले! वैद्यजी पधारे हैं।

कमलाने पूछा—कहां हैं?

विट—उधर दोलापर हैं। मैं यहीं लाता हूं। तुम लेट जाओ।

महाराजने दूरसे देखा—कमला एक प्रेंखा (दोला)पर लेटी है। एक दासीके हाथमें दलवृन्तक (पंखा) है, एकके हाथमें ताम्बूलकरंक (पनडव्वा)। एक दासी वीणा वजा रही है।

जयापीड़ने कहा—देवि! आप उठें नहीं। यथासुख लेटी रहें।

विट और महाराज दूसरी प्रेंखापर वैठे। एक दासीने महाराजके सामने पुष्पसार और ताम्बूल रखे।

महाराजने कुछ देर कमलाको देखा और पूछा—क्या व्याधि है और कबसे है?

विटने कहा—आप नाड़ी देखें।

महाराजने कमलाका हाथ अपने हाथमें लिया। एक क्षणके लिए उनका हाथ कांपा। कमलाका हाथ वीच-वीचमें कांपता था।

विटने पूछा—वैद्यजी! क्या है?

वैद्यने कहा—नाड़ीमें कुछ चंचलता और ऊष्मा है। इतना अनिद्रा-से भी सम्भव है। रोग तो इनको कोई नहीं।

कमलाने विटसे कहा—भाव ! आप तो इनकी बहुत प्रशंसा करते थे।

वैद्यका मुख लाल हो गया। उसने कहा—देवि ! रोग न हो तो वैद्य क्या कहे।

विट बोला—वैद्य ! इन्हें सुनिद्रा नहीं होती, खान-पानसे भी अरुचि है। चित्तमें उद्विग्नता है।

वैद्य बोला—अभी कोई रोग स्पष्ट नहीं है, पर विषम ज्वर (अंतरिया और कामज्वर) के कुछ लक्षण हैं। सम्पूर्ण लक्षण अभी नहीं हैं।

कमलाने एक बार विटकी ओर देखा और तब चुभती दृष्टिसे वैद्य-की ओर।

विटने कहा—कमले ! वैद्यका निदान देखा !

कमलाने सिर झुका लिया।

विट बोला—वैद्य ! साधु ! ये एक पुरुषपर अनुरक्त हैं। उसका कुल, शील, गुण सभी कुछ अज्ञात है। कामको नमस्कार ! मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि वैद्यसे छिपाना न चाहिये।

वैद्यने कहा—वह धन्य है जिसपर ये अनुरक्त हैं। पर उसका कुल-शील तो बाधक नहीं।

कमलाका मुख लाल हो गया। वह बोली—जिस कुलमें मुझे जन्म मिला है उसके उपयुक्त ही बात आपने कही।

वैद्यने लज्जित होकर उत्तर दिया—देवि ! आपको कष्ट पहुंचाने-की मेरी भावना न थी। मेरा इतना ही अभिप्राय था कि आप स्वतन्त्र हैं।

विटने कहा—बुलानेपर यदि वह प्रत्याख्यान करे ?

वैद्य बोला—भद्र ! यह सम्भव है ?

विट—कलतक इनकी अनुरक्ति भी तो ख-पुष्प ही थी।

वैद्यका हृदय जोर-जोरसे धड़कने लगा।

विट—कल कार्त्तिकेय-मन्दिरमें इनके हृदयका अपहरण हो गया।

वैद्यने मुख पोंछकर कहा—अहो! तस्करका हस्तोच्चय (हाथकी सफाई)! पर उसने गर्हित काम किया।

कमलाने पूछा—क्या वैद्य?

वैद्य—मन्दिरमें तस्करता।

कमला मुंह फेरकर मुस्कराने लगी।

वैद्य—तस्कर अति साहसी भी है। महाराज जयन्तकी उपस्थितिमें उसने ऐसा किया।

विट हंस पड़ा। उसने कहा—पर यही बात अनुकूल है। तस्कर पहचान लिया गया। न्यायकर्ता स्वयं वहां था। अब तस्करको अधिकरणशाला (अदालत) में उपस्थित भर करना है।

वैद्य—यदि तस्कर देवीसे क्षमा चाहे?

विट—तो वह पुरस्कृत भी किया जायगा।

वैद्य—तो तस्करको सूचित कीजिये कि उसका दोष प्रकट हो गया।

विटने कहा—एवमस्तु! मैं उसे समझाने और बुलाने जाता हूं। आप कुछ देर विराजें, आपके समक्ष ही वह आवे।

वैद्यका चेहरा कुछ उतर गया। विट चला गया।

कमलाने पूछा—आप काश्मीरक हैं?

—हां

—कौनसे वर्ण आपके शुभ नामको अलंकृत करते हैं।

—गौड़वासी मुझे मलयानिल कहते हैं।

—वैद्य, मुझे दो दिनोंसे हृत्कम्प होता है। ज्ञात होता है कि श्वास-क्रिया रुक जायगी। आप चिकित्सा करेंगे?

—आपके विश्वासके लिए कृतज्ञ हूं।

—आप कितने दिनों गौड़ देशको अलंकृत करेंगे?

—जबतक अन्न-जल हो।

—आप गौड़को स्थायी वासके योग्य नहीं समझते?

—मेरा भाग्य इतना प्रबल कहां!

—वैद्य, मैं चाहती हूं कि एक सप्ताह आप मेरे इस कुटीरमें निवास करें। इससे मेरा कल्याण होगा।

—मेरा अहोभाग्य है।

—आपके लिए कोई विशेष उपकरण प्रस्तुत रखा जाय?

—देवि! मैं साधारण जन हूं। अतः मेरे व्यसन सीमित हैं। मुझे केवल एक वीणा चाहिये।

—आप संगीतज्ञ भी हैं?

—नहीं देवि! मनोविनोदार्थ दो-एक गायन सीखे हैं।

—आर्य क्षमा करेंगे; आपने वैद्यकका अध्ययन किनसे किया है?

—काश्मीरके महाराज जयापीड़से।

कमला चौंक पड़ी। उसने कहा—आर्य! आप उनके शिष्य हैं? वे तो पीयूषपाणि वैद्य हैं। पर वे तो कभी-कभी किसी असाध्य रोगकी ही चिकित्सा करते हैं और किसीको शिष्य भी नहीं बनाते।

—मेरा अहोभाग्य कि उन्होंने मुझे शिष्य किया। उन्होंने यह आज्ञा भी दी कि मैं उनके औषध-भाण्डारसे चाहे जो औषध ले लिया करूं।

—आर्य, तब तो आपके समान वैद्य अब भारतवर्षमें नहीं है। कुछ दिन हुए, यहां अद्वितीय वैद्य आचार्य रोहसेन पधारे थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि महाराज जयापीड़की तुलनामें मैं बालक हूं।

—देवि! आपके यहां रहनेमें एक समय (शर्त) है।

—क्या?

—अन्य लोगोंकी चिकित्सा करनेमें स्वतन्त्र रहूंगा। मेरे कहीं आने जानेपर प्रतिबन्ध न रहेगा।

—यह तो उचित ही है। इसमें समय क्या?

इसी समय विट वहां आया। उसने कहा—वैद्य, उनका दर्शन न हुआ।

कमलाने पूछा—आप यहां कब पधारेंगे?

वैद्यने उठते हुए कहा—आज तीन बजे अमृत योग है। उसी समय।

— — — —

वैद्यजी कमलाके यहां आ गये। उन्हें कमलाके वासकगृह (शयन-कक्ष)के बगलवाला कक्ष मिला।

कमलाने वहां आकर कहा—इस कक्षमें रहनेसे मुझे सुविधा होगी। यहां आपको अनेक कष्ट होंगे; उनके लिए क्षमा चाहती हूं।

वैद्य—कष्टकी चिन्ता न करें।

कमला—मेरी पाचिका निपुण नहीं। यहां भोजन करते समय आर्याका स्मरण आपको होगा।

वैद्यने मुस्कराकर कहा—अभी दार-परिग्रह नहीं किया है।

कमलाके हृदयपरसे एक बोझ उतर गया, वह बोली—काश्मीरमें महिलाएं नहीं हैं?

वैद्य—हैं, पर विवाहमें अर्थका प्रयोजन होता है। अब आपसे जो द्रव्य मिलेगा उससे काम चल जायगा।

कमला—काश्मीरमें देव-दुर्लभ रूप और गुणका मूल्य नहीं होता?

वैद्य—मुझे तो ईश्वरने देव-दुर्लभ कोई भी वस्तु नहीं दी है।

सायंकाल आठ बजे वैद्यजी अपने कक्षसे निकले। कमला अपने कक्षसे निकली। पूछा—किस वस्तुकी आवश्यकता है? दासीसे कह दिया करें।

वैद्य—मैं बाहर जा रहा हूं। दस बजेतक आ जाऊंगा।

कमला—किसी सेवकको साथ भेजूं?

—नहीं।

—किसी ओषधिको आमन्त्रित करने जा रहे हैं?

—नहीं देवि! मैं एक गर्हित कार्यसे जा रहा हूं। यहांकी एक महिलाने मुझे प्रणय-पाशमें बांध लिया है। मैं उन्हींसे मिलने जा रहा हूं।

२

'कमलाने बहुत कष्टसे अपना मुख अविकृत रखा और हँसकर कहा—गौड़ भूमि धन्य हुई। मैं तो आपके हृदयको शुष्क समझती थी।

वैद्यजी चले गये। कमला कुछ देर वहीं खड़ी रही, फिर अपने कक्षमें चली गयी और शय्यापर लेटकर रोने लगी।

दस बजे वैद्यजी आये। उन्होंने कक्षमें आकर दासीसे कहा—मैं देवीको देखना चाहता हूं।

दासी बोली—देवी तो अभिसारको गयी हैं।

वैद्य कुछ न बोले।

दासीने कहा—श्रीमान् भोजन करें।

श्रीमान्ने कहा—कर आया हूं।

दासी चली गयी।

वैद्य कमरेमें टहलने लगे। थोड़ी देर बाद वे एक पुस्तक लेकर बैठे। दस-बीस पंक्तियां पढ़कर उन्होंने पुस्तक बन्द कर दी और टहलने लगे। इसके बाद वे वीणा लेकर बैठे और उसे मिलाने लगे।

अर्धरात्रिको कमला आयी। तीसरे कक्षमें दासीने कहा—वैद्यजीने भोजन नहीं किया।

कमलाने विस्मित होकर पूछा—वीणा कौन बजा रहा है?

—आर्ये, वैद्य!

कमला आगे बढ़ी। वासक-गृहके बाहर दालानमें अनेक वृद्ध विट, वेश्याएं और कमलाकी माता बैठी थीं। सबके नेत्रोंसे अश्रुपात हो रहा था।

एक वृद्ध विटने [illegible] कमले! [illegible] रहनेका फल आज ज्ञात हुआ।

माताने [illegible] स्वर्गीय

[illegible]

कमला [illegible] थे,

उसकी गोदमें [illegible]

वीणासे अद्‌भुत् स्वर, मूर्च्छनाका विस्तार हो रहा था। उंगलियां वीणा-के तारोंपर अत्यन्त सरलतासे, पर विद्युद्वेगसे चल रही थीं। मन्द्रतम और तारतम स्वर समान स्पष्टता और विचित्र क्रमसे निकल रहे थे। उनकी सम्बद्धतासे स्वर-लहरियां उत्पन्न होती थीं, वे लहरियां एक स्वर-धारामें परिवर्तित हो जाती थीं। उसमें हृदय कभी उठता था, कभी गिरता था, कभी दूरतक जाकर वापस आता था, कभी आवर्त्तमें घूमने लगता था।

कमलाके नेत्र मुंदने लगे, उसका हृदय मन्थित होने लगा, उसे रोमांच हो आया और अश्रुधारा वह चली।

वह मृगके पास जाकर बैठ गयी और थोड़ी देरमें वैद्यके चरणोंके पास सिर रखकर लेट गयी।

दो घड़ियोंके बाद वैद्यका हाथ रुका। वीणा स्तब्ध हो गयी, पर स्वर-लहरी मूर्च्छित होती रही। कुछ देरतक यही ज्ञात होता रहा कि वीणा बज रही है। मृगके नेत्र खुले। उसने आगे आकर वीणाकी तुम्बिकापर अपना मुख रखा। वैद्यने वीणा एक ओर रख दी, तभी उनकी दृष्टि कमलापर पड़ी।

उन्होंने व्यस्त होकर कहा—देवी!

कमलाने चौंककर सिर उठाया और उनके पैर पकड़ लिये। उसने कहा—एक भिक्षा लिये बिना न उठूंगी।

वैद्य—यह तो भिक्षाका प्रकार नहीं।

कमला—आप मुझे वीणाकी शिक्षा दें, यही भिक्षा है।

वैद्य—यह अत्यन्त साधनाकी वस्तु है। अभिसारसे और इससे विरोध है।

कमलाने नेत्र पोंछकर कहा—श्रीमान् भी तो वही करने गये थे!

—मैं शिक्षा पूर्ण कर चुका हूं।

—मैं भी शिक्षा पूर्ण होनेतक न करूंगी।

—कहना सरल है।

—करना भी।

—तुम महाराज जयन्तकी............

—नर्त्तकी हूं, प्रेयसी नहीं। कल ही मैं उस कार्यका त्याग करूंगी।

—वीणाकी साधना १२ वर्षोंकी है।

—बस?

—मैं सदा गौड़में ही न रहूंगा।

—आप जहां जायंगे, मैं जाऊंगी।

—तो देवि! मैं तुम्हें शिक्षा दूंगा।

कमलाने प्रणामकर कहा—मैं कृतार्थ हुई। आपने किनसे शिक्षा प्राप्त की है?

—स्वर्गीय महाराज ललितादित्यसे।

कमला चौंककर बोली—उन्होंने तो केवल महाराज जयापीड़को ही शिक्षा दी, यही सुना जाता है।

वैद्य—मुझे भी दी थी।

—महाराज जयापीड़ कैसा बजाते हैं?

—मुझसे अच्छा नहीं।

—आपके गुरु महाराजने किनसे शिक्षा प्राप्त की?

—उनकी एक गन्धर्वसे मित्रता थी। उन्हीं गन्धर्वने उनको शिक्षा दी थी।

कमलाने अत्यन्त विस्मित होकर पुनः प्रणाम किया।

वैद्य बोले—एक मास बाद शुभ मुहूर्त है। तबतक प्रतीक्षा करना होगा, थोड़ा देवाराधन भी करना होगा। उसकी विधि मैं बतलाऊंगा।

— — — —

वृक्षवाटिकामें विटने कहा—कमले! अब तुम उचित नहीं कर रही हो।

कमला—नाथ! प्रणय अनुचित है!

विट—प्रणय अनुचित नहीं। पर एक तो वैद्य विदेशी है।

कमला—वहीं तो रहेंगे ही। मैं वहीं चली जाऊंगी

विट—दूसरे, दरिद्र हैं।

कमला—गुणहीन धनिकोंसे श्रेष्ठ ।

विट—लोग हंसेंगे।

कमला—यह भी कहेंगे कि प्रीति हीके कारण मैं उनके साथ हूं, धनके लोभसे नहीं।

विट—उनका कुल-शील ?

कमला—भाव! मेरा? वे क्षत्रिय हैं। शील तो आप भी देख रहे हैं।

विट—हां, प्रत्यह किसी रमणीसे मिलने जाते हैं।

कमला—उनका भाव जाननेके लिए जैसे मैंने झूठा अभिसार किया था वैसे ही वे भी जाते हों!

विट—सम्भावना ही तो!

कमला—मुझे तो वे छद्मवेशी ज्ञात होते हैं। वे दरिद्र भी निश्चय ही नहीं हैं।

विट—कैसे ?

कमला—प्रथम दिन मन्दिरमें वे दो बार पीछे घूमे। इससे अनुमान होता है कि तांबूल-करंकवाहिनी उनके पीछे रहती थी। यहां वे कई बार पादत्राण धारण और मोचन करानेवालेकी प्रतीक्षामें कुछ क्षणों रुके रहे। और भी, इतना विभव देखकर भी वे चमत्कृत नहीं। वीणा तो उस दिन आपने सुनी ही!

विट—वे स्वर आज भी कानोंमें गूंज रहे हैं। तुमपर उनकी आसक्ति तो अवश्य है।

कमला—अभी निश्चय नहीं!

विट—तुम यह सोचती होओ कि वे पहले अपने मुखसे कहें, तो तुम आकाशका चन्द्र हाथमें लेना चाहती हो ।

कमलाने कुछ उत्तर न दिया।

● ● ● ●

तीन दिनों बाद—

कमला महाराज जयन्तके यहांसे नृत्य कर; आयी। चेटीने एक पत्र दिया। कहा—वैद्यजी दे गये हैं।

कमला अपने कक्षमें आयी और दीपाधारके पास बैठकर उसने पत्र खोला। उसमें एक और बन्द पत्र था। वह कास्मीरके महामन्त्रीके लिए था।

कमला अपना पत्र पढ़ने लगी।

—"देवि!

अति लज्जित होकर यह पत्र लिख रहा हूं। मैं जिन महिलापर अनुरक्त हूं उनपर एक और व्यक्ति भी अनुरक्त है। उससे आज मेरा द्वन्द्वयुद्ध है। यदि मैं जीवित रहा तो प्रातःकालतक आऊंगा। कल सायंकाल तक भी मैं न आऊं तो दूसरा पत्र कास्मीरके महामन्त्री के यहां पहुंचवानेकी व्यवस्था कर दीजियेगा।

आपके यहां मैं बहुत सुखसे रहा। आपको अनेक कष्ट दिये। इसके लिए क्षमाप्रार्थी,

मलयानिल।"

कमलाके हाथ कांपने लगे। पत्र भूमिपर गिर पड़ा। वह स्तब्ध होकर बैठी रह गयी। कुछ देर बाद उसने सब आभूषण उतारकर फेंक दिये और रोने लगी।

चेटी बाहरसे देख रही थी। उसने जाकर चिटसे कहा। चिट तत्क्षण वहां आया। कमलाने अश्रु पोंछकर पत्र चिटके हाथमें दे दिया। चिटने पढ़ा।

कमलाने कहा—आप उन्हें खोजिये।

चिटने कहा—इतने बड़े नगरमें कहां-कहां खोजा जाय! चारों ओर पहरा है, उन्हें सन्देह होगा। वैसे तो वे अपने प्रतिद्वन्द्वीसे युद्धकर आ भी सकते हैं और किसीको कुछ ज्ञात न होगा; पर अन्वेषणसे तो वे दण्डनीय हो जायंगे। द्वन्द्वयुद्ध नगरमें वर्जित है, यह तो जानती ही हैं।

कमलाने चिन्तित होकर कहा—तब ?

विट—प्रातःकालतक रुकना ही होगा। जन-संचार होनेपर मैं अन्वेषणके लिए जाऊंगा।

कमलाके नेत्रोंसे अश्रु बहने लगे।

विटने कहा—रुदन कर अमंगल न करो। ईश्वरकी कृपासे वे आवेंगे, मेरा आत्मा कहता है।

सूर्योदयके कुछ पहले विट गृहसे बाहर निकला। कुछ दूर जानेपर उसे कोई आता दिखायी पड़ा। विट ठिठक गया। उस व्यक्तिके निकट आनेपर विटने बहुत झुककर प्रणाम किया और कहा—स्वागत वीर!

वैद्य चुपचाप आगे बढ़े। विटने चलते-चलते पूछा—सब कुशल है न ?

वैद्यने कहा—हां।

कमला कक्षके बाहर पादचार (टहलना) कर रही थी। वह आगे बढ़ी और कहा—आप, आप आ गये ?

वैद्य बोले नहीं। अपने कक्षमें गये। कमला पीछे-पीछे गयी। उज्ज्वल प्रकाशमें कमलाने वैद्यको देखा और उसके मुखसे एक हलकी चीख निकली, उसने वैद्यका हाथ पकड़कर कहा—यह क्या ?

वैद्यके दक्षिण भुजदण्डपरका दूरतकका मांस लुप्त था और दक्षिण ओर पैरोंतक वस्त्रपर रक्त था।

वैद्यने कहा—युद्धका चिह्न। देवि! मैं जा रहा हूं।

कमलाका मुख विवर्ण था। उसके नेत्रोंमें भय और चिन्ता थी।

वैद्यने पुनः कहा—मैं प्रतिद्वन्द्वीको समाप्त कर आया हूं। थोड़ी ही देरमें राजपुरुष अन्वेषण करना प्रारम्भ करेंगे। उनके अन्वेषणके पूर्व ही मैं गौड़से बाहर हो जाना चाहता हूं।

कमलाने कहा—नहीं, आप यहीं रहिये। यहां आपका किसीको पता न चलेगा।

वैद्य—मैं आपको विपत्तिमें नहीं डालना चाहता।

कमला—मैं आपके लिए विपत्तिमें पड़ूं, यह सौभाग्य होगा। आप नहीं जा सकते।

वैद्य—आप क्यों एक विदेशीके लिए विपत्ति मोल लें?

कमलाके नेत्रोंमें अश्रु उमड़ आये, उसके अधर फड़कने लगे।

वैद्यने कहा—अच्छा तो आज्ञा दीजिये।

कमलाने सहसा वैद्यके स्कन्धपर अपना सिर रख दिया और कहा—मलय! मुझे भी समाप्त कर जाओ, फिर सब दिशाएं तुम्हारे लिए उन्मुक्त हैं।

वैद्य एक क्षण किंकर्त्तव्यविमूढ़से रहे। दूसरे क्षण उन्होंने कहा—कमले! मैं एक महिलासे प्रेम करता हूं।

—इससे मुझे क्या?

—यह तुम्हारा अविचार है।

—मलय! अपनी दासीपर जितनी अनुकम्पा करते हो, उतनी मुझपर कर सकोगे?

—उससे बहुत अधिक।

—तब मेरा जीवन सफल है। तुम्हारा प्रेम पानेका तो स्वप्न भी मैं कैसे देख सकती थी!

—क्यों?

—दासी हो सकना भी असम्भव लगता था, इसलिए!

—प्रिये!

—प्रभु! इस सम्बोधनका सुख मैं सहन न कर सकूंगी। मुझे दासी कहो।

—मैं तो स्वयं तुम्हारा अक्रीत दास हूं।

—मलय!

—प्रभुका नाम लेती हो?

—दासीको कोई प्रभु इस प्रकार स्कन्धका आश्रय देता है?

मलयने जोर करके कमलाका सिर ऊपर उठाया और अपना सिर उसपर झुकाया।

उसी समय वहां विटने प्रवेश किया। उसने कहा—साधु वैद्य! अब कमला स्वस्थ हो जायगी। यह अभूतपूर्व उपचार मैंने देखा।

कमला और मलय लज्जित होकर पृथक् हो गये।

सहसा विटने कहा—आह! यह क्या? वैद्यजी! पहले अपना उपचार करा लो।

कमलाने व्यस्त होकर कहा—मलय! तुम लेटो, मैं पट्टिका (पट्टी) बांध दूं।

वैद्यने कहा—भद्र! आप कष्ट न करें।

विट बोला—आप पहले वस्त्र-परिवर्त्तन करें। इन वस्त्रोंको मैं अग्निदेवको अर्पित करूं।

वस्त्र-परिवर्त्तनके बाद विटने एक औषध लगाकर पट्टी बांध दी। मलयने पर्यंकपर लेटकर कहा—भद्र! आपने बहुत उपकार किया।

विट—तो पुरस्कार दीजिये।

मलय—अवश्य।

विट—मुझे वैद्यककी शिक्षा दीजिये। आपकी यह अभूतपूर्व विधि मझे बहुत अच्छी लगी है।

कमला और मलय हंस पड़े।

विट चला गया।

कमलाने मलयको एक माला पहनायी और सिरहाने बैठकर उनके केशोंपर हाथ फेरने लगी। मलयने कमलाका दूसरा हाथ अपने हाथोंमें ले लिया, उनकी आंखें झपने लगीं।

● ● ● ●

दिनमें कोई दस बजे कमलाने आकर देखा—मलय सोये हैं। उनके मुखपर मुस्कान है, मानो वे सुस्वप्न देख रहे हों। वह उनके पास बैठ गयी और उनका हाथ अपने हाथोंमें लिया। शीतल स्पर्शसे भी मलयकी नींद न टूटी। कमलाने बगलहीमें रखी पुष्पसारकी कुतुपी (कुप्पी) उठायी और

अपने हाथोंमें उसे रगड़कर हल्के हाथों मलयके वस्त्रोंमें लगाने लगी। गोजी (नाकको ऊपरी ओष्ठसे जोड़नेवाला भाग) पर पुष्पसार लगाते समय मलय जरा हिले, उन्होंने लम्बी सांस ली और उनके नेत्र खुल गये।

कमलाने उनपर झुककर पूछा—उठोगे नहीं ?

मलयने उसका एक हाथ अपने हृदयपर रखकर आंखें बन्द कर लीं।

कमलाने स्नेहसिक्त स्वरमें कहा—उठो, देर न करो। हाथ कैसा है?

मलयने चौंककर हाथकी ओर देखा।

कमलाने कहा—भूल ही गये थे!

मलय मुस्कराये, कहा—अभी न उठाओ। तुम भी सो जाओ।

कमलाने हंसकर कहा—उठो मलय! आज कामदेव-पूजा है। स्नान कर लो।

—कैसी ?

—हमारे तो वही देव हैं। उठो,नागरिक और अन्य लोग आ रहे हैं।

—मुझे क्या करना होगा ?

—मेरे साथ पूजा करनी होगी।

—क्यों ?

—मुझे दासी बनाया है, यह प्रमाणित करना होगा।

—मुझे दास बनाया है, इसका प्रदर्शन है ?

—बुरा है ?

—बहुत अच्छा है। पर मुझ जैसा साधारण व्यक्ति.............

कमलाने मलयके मुंहपर हाथ रख दिया और उनके सिरके नीचे हाथ देकर उन्हें बैठा दिया।

मलय स्नानादि करने चले गये। चेटीने ससंभ्रम आकर कहा—महाराजाधिराज जयन्त और प्रधान मन्त्री पधारे हैं।

कमलाने चौंककर कहा—क्या ?

—हां देवि! महाराज और प्रधान मन्त्री!

—कहां हैं ?

—शिष्टमण्डप (अतिथियोंके बैठनेका स्थान) में।

—आती हूं।

कमला दोनोंको प्रणाम कर बैठी। महाराजने कहा—तुमने तो आमन्त्रण नहीं भेजा, पर हम चले आये।

कमलाने सिर झुका लिया, कहा—दासीको साहस नहीं हुआ।

—पर त्यागपत्र भेजना क्या आवश्यक था ?

—महाराज, मैं शिक्षा प्राप्त करना चाहती हूं।

—कैसी ?

—वीणाकी।

—वीणाकी शिक्षा ? तुम ?

—हां महाराज। महाराजाधिराज स्वनामधन्य ललितादित्यके शिष्यसे।

—महाराज जयापीड़से ?

—नहीं, उनके एक शिष्य और हैं, उनसे।

—हूं, काश्मीर जाओगी ?

—वे यहीं पधारे हैं।

—अच्छा ! उनका शुभनाम ?

—आर्य मलयानिल।

—तुम्हारे वैद्य ?

—जी हां !

—वे वीणा बजाते हैं ?

—अपूर्व !

—उन्हींके साथ आज कामदेव पूजन भी है ?

—प्राणप्रियसे शिक्षा प्राप्त करना क्या अनुचित है ?

—इससे बढ़कर सौभाग्य नहीं। आर्य मलयानिल कहां हैं ?

—स्नान कर रहे

—हम उनसे मिलना चाहते हैं।

—जो आज्ञा। मैं उनसे कहती हूं।

—उनसे निवेदन करो।

कमला चली गयी। थोड़ी देर बाद वह मलयानिलके साथ आयी।

महाराजाधिराज जयन्त और प्रधान मन्त्री उठ खड़े हुए। महाराजाधिराजने आगे बढ़कर कहा—स्वागत। आपका हाथ कैसा है?

मलय नमस्कार करते हुए चौंके। महाराज जयन्तने कहा—मैंने ज्यौतिषका कुछ अभ्यास किया है। कमले! आज रातको इन्होंने अद्भुत वीरता प्रकट की है।

कमलाने आशंका और चिन्ताभरी दृष्टिसे महाराजको देखा।

महाराज कहने लगे—केवल एक असिपुत्रिकासे सिंहको मार डालना इन्हींका काम है।

कमला कुछ न समझी।

महाराज कहते चले—राज्यमें एक नरखादक सिंह कई दिनोंसे उत्पात कर रहा था। उसे मारनेके सब प्रयास विफल हुए। इन्होंने उसे समाप्त कर दिया। उसीसे युद्ध करनेमें इनके हाथमें क्षत हुआ है।

कमला और भी संभ्रममें पड़ गयी।

महाराजने कहा—सिंहके मुखमें इनके हाथका मांस और अंगद प्राप्त हुआ है।

प्रधान मन्त्रीने अंगद आगे बढ़ाया।

मलयने कहा—महाराज! आपको असत्य समाचार मिला है।

महाराजने कहा—श्रीमन्! इधर देखिये।

महाराजने अंगदका नीचेका भाग सामने किया। उसपर काश्मीरका राज्यचिह्न बना था और मलयका मुख।

महाराजने कहा—महाराज जयापीड़! मेरा राज्य, मेरा शरीर, मेरा सर्वस्व, आपके चरणोंमें है।

कमला चौंककर पीछे हटी। उसने मलयकी ओर देखकर कहा—तुम.........महाराज !

मलयने उसे सहारा देकर कहा—मैं मलय हूं।

महाराज जयन्तने आगे बढ़कर महाराज जयापीड़को हृदयसे लगा लिया और कहा—महाराज ! आप देवी कमलासे........

जयापीड़ने कहा—विवाह करूंगा।

महाराज जयन्तने अपना उत्तरीय कमलाके सिरपर ओढ़ाते हुए कहा—तो इस क्षणसे कमला 'वधू' शब्दकी अधिकारिणी है और वह मेरी 'कल्याणी'-की मर्यादाकी भी अधिकारिणी है।

कमला कम्पित होकर गिर-सी पड़ी।

बनावटी भूत

पंजाब और दिल्लीके बीचका जो भूमिखण्ड 'हरियाना' नामसे प्रसिद्ध है, वहींके एक गांवकी बात है।

रातके क़रीब दस बजे थे। बैसाखका महीना। गांवके बीचकी पक्की हवेलीके विशाल दरवाजेके बाहर, छोटे मैदानमें कुछ लोग बैठे थे, चुपचाप। पूरा गांव सन्नाटेमें डूबा था, कुत्ते भी चुप थे।

पूरबकी तरफके दोनों ओरके कच्चे मकानोंकी कोई चार हाथ चौड़ी गलीके मोड़पर कोई दिखायी पड़ा। बैठे लोगोंकी आंखें उधर उठीं। एकने कहा—उदमी (उद्यमी) है।

कुछ देर बाद उदमी आया। जमीनपर पांव पटककर धूल झाड़ी; बैठते-बैठते बोला—ले! चाचा तो स्वर्ग सिधारा। चाचीसे जा मिला। मैं तो पहले कहता था, चाची छोड़ेगी नहीं।

जगतने पूछा—दीवा (दीपक) है?

उदमी—दीवा के होगा? चाचेको तो चाहिये नहीं।

सब लोगोंको ध्यान आ गया कि उस घरमें चाचा ही अन्तिम आदमी थे।

पश्चिमके रास्तेसे एक स्त्री आयी! उसने कहा—करमा गया।

उदमीने कहा—तेरह!

कुछ लोगोंने मन ही मन जोड़ा—हां, शामको चार बजेसे अबतक १३ मर चुके।

उदमीने उस स्त्रीसे पूछा—डर तो नहीं लगदा?

वह हंसी और चली गयी। उस हंसीसे कुछ लोग सिहर उठे। करमा उसका २३ सालका बेटा था।

फूलनने आह भरकर कहा—करमाके कुनबेके १२ गये। एक उसकी मां बची।

उदमी—उसका गला तू घोंट दे। पुन्न (पुण्य) होगा।

दीपाने पूछा—हां, रे उदमी! सब कितने मर लिये?

उदमी—२५०० का गाम मर लिया। आदमी एक मैं बचा। जो पड़े हैं, कलतक मर लेंगे।

दीपाने सिर झुकाकर कहा—ऐसी बीमारी भी कदे नहीं सुनी थी।

उदमी—एक कसर रैहगी। सबसे अंगूठा लगवा लेता तो सारी जमीन मेरी हो जाती।

दीपा—अब ले ले। मरे रोकने आवेंगे?

फूलन—बिना बीर-बानी (स्त्री) का माणस, तू जमीन के करैगा?

उदमी—सारी जमीन मिल जाय तो ५० गाम ब्याह लूं।

गोधन—चाचा वगैरहको ले चलना चाहिये।

उदमी—सबको इकट्ठे मर लेंण दे, इकट्ठे फैंक आवेंगे। फैंकते-फैंकते हाथ-पां टूटगे।

दीपा—चितामें लक्कड़ और फेंकने हैं।

सहसा उदमी ठठाकर हँस पड़ा, बोला—कांसीजी (काशीजी) मात हो गयी। पंद्रा दिनसे कोस भरकी चिता जल रही है; जो मरे, टांग घसीटी, सुवाहा!

गोधन—चिता तो एक हो गयी, बाकी पिंड-पानी तो अलग-अलग,

बात काट उदमीने कहा—फिकर ना करै। मैं तो हूँ! सबको दूंगा, जमीन भी तो लेणी है।

सिवधन—भई, मैं तो रातको चिताके नजीक जा नहीं सकता।

दीपा—सबेरे चितामें थोड़ी-सी आग थी। लक्कड़ थे नहीं। हम तो २२ मुरदे जमीनपर फेंक आये।

गोधन—लोवां (लोमड़ी) की टोल (झुण्ड) आ गयी होगी।

उदमी—मुरदे तो चाहे जलाये, चाहे लोवांने खाये, कोई बात नहीं; बाकी लोबां खाकर पड़ी (प्लेग) से मरैगी।

सिवधन—भई, मैं तो इस वखत वहां पैर नहीं धर सकता।

दीपाने प्रश्नसूचक मुद्रासे उसकी ओर देखा।

सिवधन—भूत-परेतसे डर लगै है?

उदमी—मैं तो जीतेसे डरूँ, मरेका क्या डर!

गोधन—जा सकता है?

उदमी—जब कहो!

दीपा—अभी।

सिवधनने आसमानकी ओर नजर उठायी, कहा—चांद छिपण में देर नहीं। अंधेरा हो जाय, तब जा।

दीपा—उदमी! एक बरतनमें चावल दूध ले जा। चितापर खीर बणाके मुरदोंके मुंहमें दे, तब जाणूं।

उदमीने सिर हिलाकर स्वीकार किया। सिवधन उठकर चल दिया। थोड़ी देरमें एक बरतनमें ५–६ सेर दूध और उसीमें ५–६ मूठी चावल डालकर ले आया।

अब उदमी उठा, बोला—घरसे हो आऊँ।

सिवधनने कहा—कौण छबीली बैठी है कि पूछने जायगा।

उदमीने जबाव नहीं दिया। थोड़ी देरमें लौटकर आया। बगलसे नंगी तलवार निकालकर हाथमें ली जो अंधेरमें भी चमक उठी। तब कहा—देख ले मेरी छबीली! मेरा बाप इसके साथ मेरा ब्याह कर गया है।

उदमी उस प्रान्तका सर्वश्रेष्ठ तलवारिया था। हाथमें तलवार लिये उदमीका सामना करनेका साहस हजार-दो हजार आदमियोंका भी नहीं था।

उदमीने दाहिने हाथमें तलवारकी मूठ पकड़ी, उसकी ओर स्नेह-भरी दृष्टि डाली। बायें हाथमें दूधका बरतन उठाया—'राम राम भाइयो! तबतक कड़ (कमर) सीधी कर लो।'

लोगोंकी उत्सुक दृष्टि गांवसे बाहर जानेवाले रास्तेपर आगे बढ़ते उदमीकी पीठपर देरतक पड़ती रही।

● ● ● ●

कोई आध कोस आनेपर मैदानमें उदमीने दूरसे चिता देखी। लपटें नहीं उठ रही थीं; और पास आनेपर अधजले कुन्दे साफ दिखाई पड़े। और पास आनेपर अंगार देख पड़े, उनकी छिटकती लाली उदमीपर पड़ने लगी। और पास...उदमीको गरमीका अनुभव होने लगा। बिलकुल पास—तलवार लाल रंगकी-सी हो गयी, बरतन भी; कुछ शवोंके पंजरोंकी हड्डियां साफ देख पड़ रही थीं, काली-काली; किसीके हाथका अगला आधा हिस्सा गिर चुका था, बाकी ठूंठ ऊपर उठा हुआ था एकदम काला, उसमेंसे धुआं निकल रहा था। बीचके एक शवका धड़ हिला, चटाख-सी आवाज हुई, और नाभिसे नीचे, कमर की तरफ कोई चार अंगुल हटकर पानीकी पतली धार छूटने लगी; एक हाथकी पांचों उँगलियां गायब थीं, केवल पंजेका आकार अवशिष्ट था, वह बीच-बीचमें हिल उठता था।

उदमीने एक किनारे बरतन रखा, सीधे खड़े होकर चारो ओर देखा—कोई २५–३० हाथ दूर कुछ शव रखे थे, पंक्तिबद्ध। चारो ओर घोर अंधकार। पंक्तिके दो-एक प्रारंभिक शवोंपर चिताकी लाली पड़ रही थी। उदमी उधर ही बढ़ा, फिर रुका; तलवारकी मूठ बरतनके भीतर अटकाकर उसे उठाया और चिताके भीतर यथासाध्य दूर रख दिया। अब वह शवोंकी ओर बढ़ा।

दो चार जानवर इधर-उधर भागे, कुछ दूर जाकर रुक गये। उदमीने तलवार घुमा दी और दौड़ाया। वे और दूर भाग गये।

उदमी लौटा, जिन शवोंपर लाली पड़ रही थी, उन्हें झुककर देखा। उनमेंसे एकको गौरसे देखा, बैठकर कहा—तुम हो चाचा! चिताके पास न होते तो पहचानता भी नहीं! दाढ़ीमें कंघी कर दूं? बड़ी प्यारी थी तुमको।

और हाथसे दाढ़ीमें कंघी करने लगा,–खीर भी डालूंगा मुंहमें। योंहीं जमीन नहीं लूंगा। और कुतरू चाच्चा कहां हैं?

उदमीने खड़े होकर और शवोंको देखना शुरू किया, पर ठीक-ठीक पहचान नहीं पाया—हो कुतरू चाचा! जमीन तुम्हारी लूंगा, खीर खिलाकर। व्याह करूंगा,बेटा हुआ तो उससे पिंड दिला दूंगा। सुना? हुँकारी भर।

शवोंके बीचसे हुँकारी भरनेका शब्द आया। उदमीने चौंककर देखा, कहा—फिरसे!

पुनः हुँकारी भरनेका शब्द हुआ। हो चाचा? मरकर तो भला माणस हो गया तू! सुरगमें मेरे बापसे मिलना तो कह देना—तेरा बेटा अच्छा है, राम-राम कही है। हुँकारी भर!

हुँकारी अबकी नहीं भरी गयी—हो चाचा! मरकर भी मेरे बापसे बुरा मान रहा है। अच्छा दोनों समझ लेना। मुझसे तो राजी है? हुँकारी भर!

—हूँ, हूँ।

—अच्छा, अब जा। औरोंसे बात करूं।

उदमीने फिर बहुतोंका नाम लेकर पुकारा, बातें कही, पर किसीनें हुँकारी नहीं भरी। उदमीने खीझकर कहा—सबके सब मरके बुरे हो गये। भला खाली कुतरू चाचा निकला।

वह लौटकर चिताके पास आया और एक लकड़ीसे खीर चलाने लगा। कोई घंटेभर बाद उसने बरतन चितासे उतारकर रखा, सोचा ठंडी हो जाय तो सबको खिलाऊँ। पर, वह तुरत ही हँस पड़ा—मुरदोंको क्या ठंडी! उसने तलवार बगलमें दबायी, कंधेपरके कपड़ेके टुकड़ेके सहारे बरतन उठाया और शवोंकी ओर चला। वह एक-एक कर शवोंके मुंहोंमें खीर डालता हुआ आगे बढ़ने लगा। जब ३-४ बाकी रह गये तो उसने बरतन रख दिया, भापसे उसके हाथ जल-से रहे थे। उसी समय अंतिम मुर्देने हाथ ऊपर उठाया और उसके सामने पसार दिया।

उदमीने कहा—घबरावै क्यों है? पारी आने दे।

और मुरदेका हाथ झटक दिया। तुरत ही फिर मुरदेने हाथ बढ़ाया। फिर उदमीने झटक दिया। तीसरी बार उदमीने हाथ पकड़ लिया और उसे तलवारसे कंधेपरसे साफ कर दिया—दुष्ट कहींका। जरा-सा धीरज नहीं है!

और हाथ दूर फेंक दिया। इसी समय उदमीने देखा—पीछे चाचापर लोबांने आक्रमण कर दिया था। वह तलवार लेकर झपटा! दूरतक लोबांको भगाया, लौटकर फिर बरतन उठाया और मुंहोंमें खीर डालने लगा। अन्तिम शवके मुंहपर बची हुई सब खीर उलट दी—ले! मरा जा रहा था!

● ● ● ●

पक्की हवेलीके सामने सब लोग बैठे थे। उदमीने बरतन रख दिया और चुपचाप बैठ गया। सिवधनने पूछा—खिला आया खीर?

उदमीने उपेक्षासे कहा—हूँ।

गोधनने बरतन उठाया, कहा—यह तो साफ-सुथरा है।

उदमी—जोहड़में धो दिया है।

सिवधन—खीर बनानेके पहले?

उदमी—हूँ।

गोधन—हूँ के?

उदमी—खिला आया।

गोधन—साक्षी?

उदमी—खीर देख आ मुरदोंके मुंहमें।

सिवधन—झूठ बोलता है।

सहसा अंधेरेमेंसे दीपा निकल आया, बोला—साखी मैं हूँ। मुरदोंके साथ पड़ा रहा, हुँकारी भरी और हाथ कटाया।

दीपाने कंधेपरसे चादर उतार फेंकी, उसका एक हाथ कंधेपरसे कटा

था, अब भी खून टपक रहा था। दूसरे क्षण उसने कटा हाथ भी सामने फेंक दिया।

उदमीने आंख गड़ाकर अपनी तलवार देखी! उसपर काला-काला कुछ जम चला था। उसने उछलकर दीपाको बांहोंमें ले लिया। गद्गद गलेसे बोला—

दीपा तू!!

——:o:——

चोर

४५ वर्ष हुए, कुरुक्षेत्रके पासके एक ब्राह्मण-बहुल ग्राममें चोर पैठा था।

गांवके किसान एक समृद्ध घरकी 'दहलीज' (ओसारा) में बैठे वार्तालाप कर रहे थे। वे मटमैले रंगकी दोहर ओढ़े थे, सिरपर मैला 'खंडका' (पगड़ी) था। वे सुतरीसे बिनी खाटोंपर बैठे थे—एक दूसरे-से सटे। खाटें भी सटी थीं। वे 'कली' (हुक्का) पी रहे थे। उनके हाथ और मूंछें हुक्केके धुएंसे पीली हो रही थीं। उक्त दहलीजमें रोज बैठक होती थी, क्योंकि गृहस्वामीकी ओरसे 'कली' की व्यवस्था रहती थी। एक कोनेमें दो-एक कण्डे बराबर सुलगते रहते थे, एक आलेपर तमाखू रखा रहता था। एक ओर कई हुक्के रखे रहते थे। इधर-उधरसे आते-जाते लोग वहां रुक जाते थे और दो-चार कश खींचकर आगे बढ़ते थे। इस प्रकार प्रातःकालसे अर्द्धरात्रितक वहां कोई न कोई बना ही रहता था। रातको काम-काजसे खाली होकर लोग वहीं चले आते थे और हुक्का हाथोंहाथ घूमता रहता था।

गंगादत्तने कहा—हां रे सोनी! बहू ठीक है न?

भगवानाने पूछा—बहूके क्या हुआ? थोड़ी देर पहले तो मैंने देखी थी।

गंगादत्तने कहा—लड़का।

—लड़का हुआ? बड़े भाग! कब?

—दोपहरको। खेतपर रोटी लेकर जा रही थी। रास्तेमें हुआ।

....

—कोई पास नहीं था। उसने चादरसे लड़केको पोंछकर गोदीमें ले लिया और रोटी देकर घर आयी।

—तो क्या बड़ी बात हुई। हरसाल १०–५ लड़के ऐसे ही होते हैं।

—बात बड़ी कुछ नहीं। पूछता था कि बहू अच्छी है न!

—हां अच्छी है। शामको तो जोहड़ (पोखरा) से पानी भरकर ला रही थी।

सोनीने कहा—अबकी ठण्ड ज्यादा पड़ेगी।

—क्यों?

—अभीसे हवा ठण्डी हो गयी। महीनेभर बाद तो पाला पड़ने लगेगा।

—दो मांडे (रोटी) ज्यादा खाना बस! भैंसके नीचे घी कितना है?

—तीन सेर।

—तो फिर क्या! जाड़ा छोड़ ओला पड़े। क्यों, रामजीलाल अब अच्छा है न?

—हां, आज ताप (ज्वर) नहीं आया। २२ दिनमें उतरा।

—कुछ खाया?

—हां, आज तो २१ मांडे खाये।

—चलो चंगा। अभी दो-चार दिन ज्यादा नहीं खाना।

रामेसरने कहा—ताऊके जागनेका वखत हो गया।

—क्यों ११ बज लिये?

—बजते होंगे।

—आज तो लड़कोंकी दौड़ थी?

—हां थी। गोकलने २२ हाथकी डांक (उछाल) मारी।

—चोखा, अभी बालक है। और?

—गोकलसे आगे कोई छोरा (लड़का) नहीं गया।

—भगवान मौज (आनन्द) करे। गोकलपर आस है। अच्छा गाभरू (जवान) निकलेगा।

—गोकलके पीछे ताऊने डांक मारी। २७ हाथ गया।

—अच्छा! भई, ताऊकी बात मत करो।

—क्यों नहीं करो। गोकल १७ बरसका, ताऊ ६४ बरसका।

—तो क्या? ताऊने जितना घी खाया उतना गोकलने अभी दूध नहीं पिया।

—भई, ताऊके सहारे गाम (गांव) मस्त है। किसीको यह नहीं मालूम होता कि मेरे बाप नहीं है।

—ताऊ युग-युग जीयो। ऐसे आदमी क्या होते हैं!

—ना जी! वह याद है! मोडा (कनफटा साधु) आया था! वह कई गांवोंसे औरतें भगा चुका था। ताऊने कहा—'इस गामके बाहर जाओ साईंजी।' साईं बोला—'परेत छोड़ दूंगा तेरे ऊपर।' ताऊ बोला—'मैं छूट पड़ूंगा तेरे ऊपर।' और उन्होंने मोडेको पटकके ऐसा मारा कि लीला (नीला) कर दिया। उस दिनसे आजतक कोई मोडा गामके नगीच (नजदीक) नहीं आया।

—ताऊका जस (यश) कहांतक कहोगे? ताऊके डरसे आसपासके गाम कांपते हैं।

—अच्छा तो उठो।

—चलो।

लोग उठने लगे। दहलीजके बाहर, गलीमें एक आदमी दरवाजसे चपका खड़ा था और बातें सुन रहा था। वह धीरेसे हटकर अंधेरेमें चला गया।

● ● ●

गांवके सिरेपर एक कमरा था। वह मिट्टी थोपकर बनाया गया था। धंरनकी जगह पेड़ रख दिये थे और डालोंसे सिल्लियोंका काम लिया गया था। ऊपरसे दो हाथ मिट्टी थोप दी गयी थी।

ताऊजी शामको ६ बजे खा-पीकर इसीमें चले आते थे। वे धानके पोरेपर पड़ रहते थे और गलेकी माला निकालकर जप करना शुरू कर देते थे। थोड़ी देरमें उन्हें नींद आ जाती थी। रात ११-१२ बजे वे जग जाते थे और पड़े-पड़े माला फेरते रहते थे। गांवमें कहीं कुछ आहट मिलती तो सिरहानेसे लाठी उठाकर हाथमें लेते, माला गलेमें डाल लेते और गांवकी परिक्रमा कर पुनः अपने कमरेमें लेट रहते।

इसी नियमके अनुसार ताऊजी आज भी जग चुके थे और माला फेर रहे थे। कहीं कोई कुत्ता भूंका। ताऊजीने ध्यानसे भूंक सुनी और आप ही कहा—किसीको देखकर भूंका है।

उन्होंने माला गलेमें डाली, लाठी उठायी और बाहर निकले।

गांवके बीचकी एक गलीमें एक मकानकी ओर देखकर एक कुत्ता भूंक रहा था। ताऊजी खांसे। कुत्ता चुप होकर उनके पास आया और दुम हिलाने लगा। ताऊजीने उसपर हाथ फेरा और चुपचाप खड़े हो गये। मकानके भीतर कुछ आवाज सुन पड़ी।

ताऊजीने पुकारा—मौनी! ओ मौनी!

कोई न बोला। आवाज बन्द हो गयी।

ताऊजीने लाठी जमीनपर टेकी और उछलकर उस मकानकी १४ हाथ ऊंची दीवालपर जा खड़े हुए। इसके बाद वे भीतर आंगनमें कूद पड़े। साथ ही कोई भागा और सीढ़ीपरसे छतपर आकर, गलीमें कूद पड़ा। ताऊजी यथापूर्व पुनः गलीमें आ गये।

वह आदमी गांवसे बाहर भागा जा रहा था। कुत्ता भूकता हुआ पीछे दौड़ा। पर उस आदमीके दो-तीन ढेले खाकर वह खड़ा हो गया और भूंकने लगा।

ताऊजी भी दौड़े। वे उस आदमीसे ५-७ हाथ पीछे थे। ६-७ कोसके बाद उस आदमीने सिरपरसे पगड़ी उतारकर बगलमें दबा ली। और दो कोस जाकर उसने जूते फेंक दिये। ताऊजीने झुककर उन्हें उठा लिया।

वे बराबर ५–७ हाथ पीछे थे। ३–४ कोस और जाकर वह आदमी खड़ा हो गया। ताऊजी भी ५–७ हाथ इधर रुक गये।

वह आदमी हांफ रहा था। ताऊजी सहज भावसे खड़े थे। १५ मिनट बाद ताऊजीने कहा—लालचन्द, अब तू सुस्ता लिया, फिर दौड़।

लालचन्दने चौंककर कहा—पहचानते हो?

—तुम्हारी दौड़से पहचाना।

—अब तुम लौट जाओ। मैं नहीं समझता था कि तुम ऐसे हो। लेकिन अब तुमको लौटना पड़ेगा।

—क्यों?

—लालचन्दका छुरा देखा है?

—नहीं।

—तो मत देखो। लौट जाओ।

—तुम्हारी दौड़की परसंसा सुनी थी। वह तो कुछ नहीं निकली। अब छुरा भी देखना है।

सहसा लालचन्दने विद्युद्वेगसे ताऊजीपर आक्रमण किया। ताऊजी पैंतरा बदलकर खड़े हो गये और लालचन्दका छुरेवाला हाथ पकड़कर ऐंठ दिया। छुरा गिर पड़ा। ताऊजीने कहा—फिर उठा।

लालचन्द बोला—हाथकी हड्डी टूट गयी।

ताऊजीने लालचन्दके पंजेमें अपना पंजा बैठाया, दूसरे हाथसे उसका कन्धा पकड़कर उसके हाथको झटका दिया। खट्से आवाज हुई।

ताऊजी बोले—हड्डी बैठ गयी। अब उठ, दौड़ या छुरा उठा।

—अब माफ करो। मैं तुमको पूरा पहचानता नहीं था।

—ऐसे नहीं। गांवमें आनेका दण्ड तो मिलेगा ही।

—अब क्या बाकी है?

—बताता हूं।

ताऊजीने उसका दूसरा हाथ ऐंठकर पकड़ा। उसे खड़ा किया और

अपने गांवकी ओर भाग चले। चाल धीरे-धीरे तेज होती गयी। लालचन्द गिड़गिड़ाता रहा, रोता रहा, पर ताऊजी दौड़ते ही रहे। लालचन्दके नाखून उखड़ गये, पैर सूज चले, कई बार गिरकर घसिटनेसे घुटनोंतकका चमड़ा छिल गया; वह बेहोश-सा हो चला।

पौ फटते-फटते ताऊजीने उसे मौनीके मकानके नीचे लाकर छोड़ दिया। लालचन्द गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया।

ताऊजीने गांववालोंसे कहा—नीम पीसकर पैरोंपर लगाओ, मालिश करो, घी-दूध पिलाओ।

होशमें आनेपर लालचन्दने कहा—अब जीतेजी इस गांवमें नहीं आऊंगा।

——:o:——

हजारी गुरू

कालूने—उत्सुकता, चिन्ता, क्षोभ, क्रोध एवं लज्जासे मिश्रित स्वरमें कहा—

अब दादा!

रामसेवक पांड़े रोआसे हो गये, कुछ उत्तर न दे सके।

इतनेमें किसीने कहा—वह आये!

सबकी आंखें उधर ही उठ गयीं। हजारी गुरू आ रहे थे। ६० के अन्दाज उम्र, ६ फुटके आदमी, मूंछें दोनों ओर बिच्छूके डंक-सी मुड़ी हुईं, हाथों और जांघोंमें मछलियां छटक जाती थीं, हाथ भरका सीना, गालोंपर सेब-सी लाली, हाथमें गँड़ासा।

हजारी गुरूने पास आकर चारो ओर देखा—रामसेवक पांड़ेके घरके बाहर मैदानमें दरियां बिछी थीं, १५०-२०० आदमी बैठे थे, बीच-बीचमें लालटेन और बैठकियां रखी थीं, कोई १०० आदमी १०-१०,२०-२० के गिरोहमें दरियोंसे दूर धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। हजारी गुरूको देखकर सब सिमिट आये और बैठे हुए उठ गये।

हजारी गुरूने रामसेवकसे पूछा—क्यों महतो! लड़केका तिलक है और औरतें चुप बैठी हैं! दो-ठो ढोल नहीं मिले!!

कालूने आगे बढ़कर कहा—तिलकहरू नहीं आये।

हजारी गुरूने तड़पकर कहा—क्या!

मुसरीनें कहा—महतोके किसी दुसमनने भड़का दिया।

गुरूने कहा—हूँ।

रामसेवक महतो रोते हुए गुरूके पैरोंपर लोट गये—इज्जत मिट गयी गुरू! मुंह दिखाने लायक नहीं रहे।

गुरूने कहा—हूँ।

रामसेवक रोते ही रहे।

गुरूने कहा—मेहरियोंकी तरह रोते क्या हो।

रामसेवक उठ खड़े हुए, कुरतेकी आस्तीनसे आंखें पोंछ डालीं। गुरू गँड़ासेका सहारा लेकर खड़े हो गये, कुछ सोचने लगे।

कुलवुलने कहा—तो क्या किया जाय गुरू!

गुरू चुप। जैसे सुना ही नहीं।

कालूने पांच मिनट वाद साहसकर पूछा—क्या हुकुम है गुरू!

गुरू ध्यानावस्थित रहे।

दस मिनट वीते। रामसेवकने अधीर होकर कहा—पत्तल पड़ने दो भैया! सव लोग जेंओ। आखिर जो वना है, फेंक थोड़े ही दिया जायगा।

गुरू वैसे ही खड़े रहे।

मैदानमें पत्तलें विछने लगीं, लोग वैठने लगे।

रामसेवकने गुरूसे कहा—चलो दादा!

गुरूका ध्यान टूटा—क्या! तिलक नहीं हुआ तो हम खायं कैसे? पत्तलोंपर वैठे लोगोंकी गरदनें झुक गयीं, कुछ लोग उठ आये।

रामसेवकने कहा—तो उपाय क्या है दादा!

गुरूने चारो ओर देखा, वोले—क्यो भाइयो! तिलक नहीं होगा?

कोई कुछ न वोला।

गुरूने उच्च कंठमें कहा—कितने आदमी मरनेको तैयार है? इस किनारे आ जाओ।

कोई २०० आदमी हुंकार करके एक ओर छँट गये।

गुरूने प्रसन्न होकर कहा—रामसेवक! तिलक नहीं, शादी होगी। आज!

लोगोंका दम क्षण भरको रुक गया। भीड़मेंसे एक वूढ़ा लाठीके सहारे

आगे निकला। गुरूने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ा। उसने कहा—हजारी! बहुत दिन बाद आज खूनमें जोश देखा है। जिओ बेटा।

गुरूने झुककर वृद्धके चरण छुए—दादा! आज शादी होगी।

वृद्धने कमर सीधी करते हुए कहा—तुम्हारे लिए क्या बड़ी बात है बेटा! रामसेवक!

रामसेवक आगे आये। वृद्धने कहा—औरतोंसे कहो, गीत गावें। और आंगनमें मँड़वा गाड़ो।

रामसेवक दुविधामें खड़े रहे। वृद्धने आंखोंसे आग बरसाते हुए कहा—रामसेवक! हजारीकी बात नहीं सुनी!

रामसेवक अपराधीकी भांति पीछे हटे और भीड़में मिल गये।

गुरूने छँटे हुए आदमियोंको देखा। कहा—हमें तो भैया १०० ही आदमी काफी होंगे।

कोई हटा नहीं। गुरू हँसकर आगे बढ़े—तुम जाओ भैया, बहू सरापेगी हमें। और तुम भी जाओ बेटा, हम लोगोंके रहते तुम्हें क्या फिकिर, और तुम भी............

धीरे-धीरे गुरूने १०० आदमी छांट दिये। अब छंटे हुए १०० रह गये। दौड़नेमें घोड़े जैसे, लाठी-तलवार चलानेमें बिजली।

गुरुके अस्वीकृत लोगोंमेंसे कुछने कहा—क्या हम मरनेसे डरते हैं?

एक युवकका चेहरा तमतमा उठा था।

उसने कहा—मेरे हाथमें क्या लाठी नहीं ठहरेगी दादा!

गुरूने गँड़ासेवाले हाथसे उसे अपने सीनेकी ओर खींचकर, दूसरे हाथसे उसकी ठुड्डी जरा ऊपर उठा कर कहा—बेटा! चार दिन हुए तुम्हारा गौना आया है, कुछ हो गया तो लोग मुझे क्या कहेंगे?

और समष्टि रूपमें सबसे कहा—तुम लोग भैया, गांव अगोरना।

और तब गुरू मरनेको तैयार छँटे लोगोंसे धीरे-धीरे कुछ कहने लगे।

औरतें गीत गा रही थीं, लेकिन उनमें स्वाभाविक उल्लास और उमंग नहीं थी।

—:०:— —:०:— —:०:— —:०:—

फागुनकी रात, १० बजेका वक्त। रामसेवकके गांवसे ४ कोस दूर एक मैदानमें १०० आदमी जमा थे। हजारी गुरूने कहा—अब तीन कोस और चलना है। छेदा पासीको भेज दिया है। जहरवाली रोटी उसने वहां गांव भरके कुत्तोंको खिला दी होगी। अगर कोई बचा कुत्ता भूके तो उसे ठिकाने लगा देना होगा।

लोग चुप थे। फिर गुरूने कहा—१० आदमी यहां रहो।

दो कोस और जाकर गुरूने कहा—२० आदमी यहां रहो। अगर गांववाले लड़ते हुए यहांतक आ जायं तो उनपर पीछेसे टूट पड़ना।

गावके भीतर घुसनेवाले रास्तेपर खड़े होकर गुरूने धीरे-धीरे कहा—५० आदमी यहां रहो। गाववालोंसे २० मिनट जमकर लड़ना, इसके बाद लड़ते हुए पीछे हटते चलना। . . . .

बाकी लोग पैर दबाकर गावमें घुसे, गुरू आगे थे। गांव सोया हुआ था। घरोंके दरवाजे बन्द थे। कहीं-कहीं दरवाजेके ओसारेमें एकाध खाटपर लोग सोये थे।

दस मिनट बाद लोग एक जगह पहुँचे। छोटा-सा घर था, बाहर मैदानमें एक खाटपर चदरा ओढे कोई सोया था।

इतनेमें छेदा पासी एक कोनेसे निकला, फिसफिसाकर गुरूसे कहा—बहूका भाई है। घरके और लोग खेतपर है।

गुरूने इशारा किया। आठ आदमियोंने सोये आदमीको कपड़ोंसे ढक लिया। एकने दियासलाई जलाकर बहूके भाईके मुंहके पास की। गुरूने गंडासा उलटकर उसे एक ठोका दिया। सोया हुआ तड़पा—कौन?—और उसका हाथ सिरहानेकी ओर गया।

दूसरी सलाई जली। सोये हुएने देखा—आठ बरछे ऊपर तने हैं, पचासों आदमी चारो ओर हैं।

फिर सलाई जली। गुरुने कहा—चुपचाप पड़े रहो, नहीं तो छेद दिये जाओगे। तुम तिलक करने नहीं आये, हम वहू लेने आये हैं।

सलाई बुझ गयी।

गुरुने दरवाजेपर ठोंक दी। फिर एक वार। भीतरसे निद्रा—विजड़ित कंठमें किसीने पूछा—भैया?

गुरुने गला दबाकर कहा—पानी दे रे!

दरवाजा खुला। गुरुने झपटकर खोलनेवालेको जमीनसे उठा लिया, एक हाथसे उसका मुंह बन्द किया, दांतपर दांत रखकर कहा—चिल्लाई तो गला घोंट देंगे।

पर इसकी जरूरत न थी। उनके हाथोंका बोझ शिथिल हो गया, लड़की मूर्छित हो गयी थी। गुरुने बगलके आदमीको उसे दिया। बाहर खाटके पास एक डोला रखा था, उसीमें उसे डाल दिया गया।

इतनेमें एक स्त्रीने आगे बढ़कर कहा—बसन्तिया! कौन है?

गुरुने झपटकर उसे भी उठाया। वह त्रस्त होकर टूटते गलेसे बोली—मेरी मांगमें सेंदुर है। मेरी मांगमें........

गुरुके हाथसे छूटकर वह जमीनपर गिर पड़ी। एक आदमीने दियासलाई जलाई। एक कोनेमें एक और लड़की सिमटी-सिकुड़ी, भीत, बैठी थी।

गुरुने पूछा—वह कौन है?

गुरुके पैरके पासकी स्त्रीने कहा—छोटी ननद।

गुरुने उसे हाथ पकड़कर उठाया—चल, सीधेसे।

वह गिरती-पड़ती चली। वह भी उसी डोलेमें बैठा दी गयी। चार आदमियोंने डोला उठाया और तीर-वेगसे गांवके बाहर चले! डोलेके दोनों तरफ दो-दो आदमी बरछें लिए दौड़ रहे थे।

गुरुने कहा—वहूके भैया! दोनोंको ले चले।

गुरूने वरछेवालोंको संकेत किया। वे हट गये। वहूका भाई उठ वैठा। कांपते हुए वोला—अच्छा नहीं किया हजारी गुरू!

गुरु हँस पड़े, ठठाकर। लोगोंसे कहा—चलो भैया, दो चार दिनमें खून ठण्डा हो जायगा।

गांवके प्रवेश-द्वारपरके ५० आदमियोंके वीचसे गुरू और उनके साथी निकल गये। अव वे हवासे वातें कर रहे थे। थोड़ी ही देरमें वे डोलेवालोंसे मिल गये।

रामसेवकके दरवाजे डोला रख दिया गया। चारो ओरसे लोग उमड़ने लगे। गुरूने उन्हें रोककर कहा—औरतोंको वुलाओ। दो चादर लाओ।

३०-४० औरतें आई। रामसेवककी पत्नीने दोनोंको चादरें ओढ़ा दीं।

रामसेवकने कहा—गुरू! दोनोंको क्यों ले आये?

गुरूने मुस्कुराकर कहा—छोटेका व्याह नहीं करना है क्या?

गुरू पीछे छूटे अपने साथियोंके पास लौट गये।

मड़वेके नीचे रामसेवकके दोनों लड़के वैठे, दोनों सिसकती वहुएँ वैठा दी गयीं; पुरोहितजी व्याह कराने लगे।

पीछे छुटे आदमी भी लौट आये। गांवके ३०-४० आदमी ही हजारी गुरूका नाम सुननेपर भी आगे आये थे। दोनों दलोंमें डटकर युद्ध हुआ। पीछे हटते-हटते जव वे लोग कोसभर आ गये तो वहांवाले पीछेसे टूट पड़े! इसी समय गुरू आ गये, गुरू आ गयेका शोर मचा! वस तभी वे लोग भी भाग गये।

कुल ५–७ आदमियोंका सिर फूटा था। कुछकी वाहोंपर और कंधों-पर लाठियां लगी थीं।

गुरूने कहा—पट्टी वांध आओ।

उन्होंने कहा—अव तो व्याह देखकर वांधेंगे।

और वे मंडपकी ओर चले। गुरू भी मुस्कुराकर पीछे हो लिए।

ढोल वज रहा था, औरतें गीत गा रहीं थीं। उनकी वाणीमें उल्लास और उमंग फूटी पड़ती थी।

गाँवका अन्तिम व्यक्ति

सत्यकिंकर भटाचार्य अपने चंडी-मंडपमें बैठे थे। उम्र उनकी थी कोई ७० की। दन्तविहीन मुख, माथेपर अनेक रेखाएँ, अस्थिशेष शरीर।

सहसा लालू उनके पास आकर खड़ा हो गया। भटाचार्यजीने स्नेह-सिक्त स्वरमें कहा—उधर ही रह बेटा! कहांसे घूम आया?

लालूने अभिमान भरे स्वरमें कहा—मरनेको लगे हो, अभी तुम्हारा अज्ञान नहीं गया!

'अरे बेटा! जीवन भर जिस अज्ञानको ढोया है, उसे अब छोड़ दू तो उसे आश्रय कहां मिलेगा?'

लालूने कहा—बहुत दूरसे आ रहा हूँ। जैसे इस गांवमें अकेले तुम हो, वैसे ही कोसोंतकके गांव खाली हैं।

'सब लोग कहां गये? कोई परिचित मिला था?'

लालूने कहा—परिचितोंके शव देखे। जीवित तो कोई नही मिला।

'कुछ खानेको मिला?'

लालूने पेटकी ओर देखकर कहा—कहां! खानेको ही मिलता तो लोग गांव छोड़कर भाग जाते? तुम भी क्यों नहीं गये?

'जानता है, ७० का हुआ। पढ़ा हूँ न्याय शास्त्र। उसीके बलसे देखा कि सिवा न्याय पढ़ानेके और कुछ तो कर नहीं सकता। सो, इस समय पढ़ेगा कौन?'

लालू—आखिर गांवके और बुड्ढे भी तो गये हैं।

'उनके घरवाले ले गये। सो भी कितनी अनिच्छासे। मुझसे तो अब लेन चला भी नहीं जाता, आंखोंसे भी कम सूझता है। एक तरहसे बोझ हूँ। चावलका बोरा होता तो लोग खुशीसे ले जाते।'

लालू—तुम तो मूर्ख हो। तुम्हारे पास तो कितने ही बोरे थे चावलके। एक दाना भी रखा तुमने? सब तो बांट दिया।

'तो क्या करता? अन्नके अभावमें लोग मरते और मैं चावल रखे बैठा रहता?'

अपने भरको तो रख लेते!

'सुन! सभीने तो रखा था अपने-अपने लिए? समाप्त तो हो गया। हां, तो तूने देखा क्या?'

लालू—नवद्वीप तककी दौड़ लगायी न! वहां हजारों औरतें एक बारके खानेके लिए अपनेको बेच रही थीं। बहुतसे लोग उन्हें खाना देकर या खाना देनेका आश्वासन देकर नावोंमें बैठाकर न जाने कहां ले गये।

भट्टाचार्यजीकी आखोंसे आंसू बहने लगे। क्षितिजकी ओर ताककर बोले—बंगभूमिकी यह दशा! हे मधुसूदन!

लालू कह चला—रास्तेमें, खेतोंमें, खाइयोंमें, नालोंमें जहां-तहां लाशें पड़ी थीं। उनपर गीध, कौए और सियार जुटे हुए थे।

'कुत्ते नहीं?'

लालूने गला साफ करके कहा—हां, कुत्ते भी थे। साले मुझे देखते ही काटने दौड़े। किसी तरह जान बचाकर भागा। एक जगह एक बेहोश आदमीकी टांग गीदड़ काट रहा था। वह कराह रहा था, पर खिसकने तककी शक्ति उसमें न थी।

'तब?'

लालू—मुझे देखते ही गीदड़ भागा। मैं बहुत देर खड़ा रहा। लेकिन बचना कहां!

'मधुसूदन! मधुसूदन!!

लालू—एक जगह एक बड़े भारी अहातेमें चावल बंट रहा था। मुझे गंधसे साफ मालूम हुआ कि वह सड़ रहा है। मैंने बहुत कुछ कहा वहांके लोगोंसे, पर उन्होंने मुझे मार भगाया।

'क्या? लोग अन्नके विना मर रहे हैं और सरकारी गोदामोंमें वह सड़ाया जा रहा है? यह तो....

लालू—देखो दादा! लाल मुंहके गोरे आदमियोंकी निंदा मत शुरू करो। मेरी जातके वहुतसे लोगोंकी उनकी दया से प्राण-रक्षा होती है।

'तुझे क्या? तुझे तो नहीं दिया न!'

लालू—मार खाकर मैं भागा, पर थोड़ी देर वाद लौटकर गया। भूखके मारे विकल था न! तव एक गोर महाप्रभुके कहनेसे एक जमादारने उसी चावलमेंसे दो-तीन अंजुली दिया।

'खा लिया तूने?'

लालू—मेरे पास अंगोछा तो था नहीं कि वांध लाता। तुम क्या खाते हो आजकल?

'देख, झोपड़ीपर यह कोंहड़ेकी वेल है न—! दो-चार दिनमें एक कोंहड़ा लगता है। उसे ही खाता हूँ।'

लालू—मछली-अछली छोड़नेका दण्ड पा रहे हो! खाते तो अच्छा रहता।

'मरनेके किनारे हूँ। अव क्या नियम छोड़ूं!'

लालू—शालिग्रामजीका क्या किया?

'देख, यह गलेमें वांध लिया है। अच्छा हुआ, मैं अकेला ही दुनियामें रह गया। नहीं तो न जाने क्या-क्या देखना पड़ता! ईश्वरने अच्छा ही किया।'

लालूने ताच्छिल्यसे कहा—ईश्वर! अभी पेट नहीं भरा ईश्वरसे!

'वह पेट भरनेकी चीज है भी तो नहीं! वह तो मन भरनेकी चीज है। कुछ वरस पहले इसी चंडी-मंडपमें ही तो मैंने उस वाहरसे आये हुए अनीश्वरवादीको हराया था। था तो तू भी एक कोनेमें, लेकिन पढ़ा-लिखा तो है नहीं; समझा क्या होगा?'

'सो तो कुछ नहीं समझा। हां, सिद्ध तो तुमने कर दिया, लेकिन ईश्वर है या नहीं?'

'जब मन जैसा कहे। मेरा तो सदा कहता है कि है।'

लालू—अच्छी बात है। तो जाऊँ, जरा घूम-फिर आऊँ। आज, सुना है, कोई बड़ा अफसर आनेवाला है।

'जा, गांवोंमें भी उसे लाना। यहांका हाल भी दिखा देना।'

लालू—तुम्हारी बातें! अरे, अफसर मोटरमें आते हैं। उनके जानेका रास्ता साफ रखा जाता है। गावमें कहीं मोटर बिगड़ गयी तो?

'तो फिर आते हैं किस लिए?

लालू—आवेंगे तो अखबारोंमें छपेगा, उनके फोटो छपेंगे। लोग जानेंगे कि हां, दौरा किया।

—:०:— —:०:— —:०:— —:०:—

लालू लौटकर आया तो देखा—उसी चंडीमंडपमें भट्टाचार्यजी लेटे हुए हैं, पड़े हैं कहना अधिक उपर्युक्त होगा।

भट्टाचार्यजीने कहा—देख, यह तेरी बड़ी खराब आदत है कि घुसा चला आता है। दो चार हाथ दूरसे बातकर। तेरी गंध मुझे पसन्द नहीं है।

लालू—तो महीनोंसे तो नहाया नहीं हूँ। पोखरोंके आसपास काई पड़ी है। दुर्गन्धसे माथा घूम जाता है।

'इसीसे कहता हूँ, जरा दूर बैठ।'

लालू—उस दिन अफसर साहब आये थे। उनसे अपनी विपत्ति गाथा कहने गांवोंके आदमी दौड़े, बहुतसे रास्तेमें मर गये। अफसरने कहा—बहुत जल्द पानीको मिलेगा। पहले मिलना।

'इन लोग किसीसे कुछ नहीं मिला?'

लालू—अफसर कैसे रुककर आगे गया। मालिकोंने कुछको लिया, फिर सबको भगा दिया। उन्हें हिम्मत ज्यादा दम घुटे घरमें बैठा, बना सा अपने घर भेज दिया।

'अच्छा किया ! सड़नेसे अच्छा है कि किसीके पेटमें गया।'

लालू—एक बड़ा अफसर आज घूस लेने और गबन करनेमें पकड़ा गया है। एक दिन मुझे उसने एक रोटी मांगनेपर वेंत मारा था। आज मैं उसे चिढ़ाता हुआ बहुत दूरतक गया।

'ऐसे ही कर्मोंसे तेरी यह दुर्दशा है। और करके न जाने क्या फल पावेगा।'

लालू—तुमने तो अच्छे कर्म किये हैं न ! तभी स्वर्ग भोग रहे हो। और सुनो, एक अफसर पकड़ा ही गया तो क्या हुआ ? मैंने तो छोटेसे बड़े तकको लेते देखा है। कोई चार पैसे लेता है कोई लाख। कोई खुद लेता है, कोई अपनी बीबीको दिला देता है।

'औरतें अब बिकने आती हैं ?'

लालू—रोज ही। परसों २०-२५ को ३-४ आदमी ले गये। अंगरेजीमें कह रहे थे कि अमेरिकन सिपाही इनके बहुत पैसे देंगे।

'सरकार रोक-टोक नहीं करती ?'

लालू—फिर सरकारकी बात ! पास ही के टोलेके एक महामहोपाध्यायसे सुना था कि पहले भारतवर्षके उदार लोग अतिथियोंको अपनी पत्नियां अर्पित करते थे। ये सिपाही भी तो सरकारी अतिथि हैं। जो भारतवासी सरकारी सहायता कर रहे हैं, उन्हें सरकार खिताब देगी।

'अच्छा !'

लालू—कलकत्तेमें सिपाहियोंके लिए अप्सराओंका इन्तजाम सरकार कर रही है। उनके रहनेके लिए चाहे जिसका मकान खाली करा लिया जाता है। एक गिरजाघरके अधिकारीने इसका विरोध किया था।

'क्यों ?'

लालू—क्योंकि गिरजाघरके आस-पासके मकान खाली कराये गये थे। जबतक यहांतक नौबत नहीं पहुँचती थी, पादरी साहब चुप थे।

'क्यों ?'

लालू—तब शराब और मांसकी महक और लज्जापूर्ण शब्दोंसे

भरी हवा सीधे गिरजाघरमें घुसती न! इतना भी नहीं समझते!

भट्टाचार्यजी चुप रहे।

लालू—गांवोंमें विदेशी बीमारियां बहुत फैल रही हैं, देशी तो थीं ही। आयुर्वेद-शास्त्र पढ़ा है तुमने? केवल न्यायशास्त्रसे तुम विदेशी बीमारी नहीं समझ सकोगे। सुना है, दवाइयां विलायतसे चल चुकी है। जल्द ही आ जायंगी।

भट्टाचार्यजीने सहसा पूछा—ये खरोंच तेरे शरीरपर कैसी है? खून भी निकल रहा है रे!'

लालूने लज्जायुक्त होकर, कुछ मुस्कुराकर कहा—अब जाने भी दो!

'नहीं बता! कोई जड़ी-बूटी लगा दूं?'

लालू—बात कुछ नहीं। जरा प्रेम-प्रसंग था। अपनी एक सजातीयासे प्रेमालाप कर रहा था, सहसा उनके कई प्रेमी टूट पड़े मुझपर। आश्चर्य तो यह कि वह भी उन्हींके पक्षमें हो गयी।

'तुझे शर्म नहीं आती! हड्डी-हड्डी निकल रही है, खाना नसीब नहीं और चला प्रेमालाप करने!'

लालू—यह तो भट्टाचार्यजी! आप अन्यायकी बात कह रहे हैं। आपको कुछ ऋषि-मुनियोंके उदाहरण देने होंगे क्या? कामशास्त्र पढ़ा है आपने? यह भूल तो सबसे बड़ी ठहरी!

'जबान न लड़ा! ऋषि-मुनियोंके उदाहरण देगा! नीच कहींका।'

लालू—आपका नमक खाया है। गालियां भी प्रेमसे खा लूंगा। लेकिन अब [illegible] ज्यादा [illegible]। तो चलिये।

—:o:— —:o:— —:o:— —:o:—

दूसरे दिन उस गांवमें कुछ लोग आये। इधर-उधर [illegible] धर्मशालामें ठहरे।

[illegible] भट्टाचार्यजीको [illegible] साष्टांग प्रणाम

किया। फिर बोला—महर्षि थे! आत्मज्ञानी! नहीं ही गये यहांसे कितना कहा!

धीरेनके ओठ फड़ककर रह गये।

ताराशंकरने चौंककर कहा—अरे! यह कुत्ता कहासे? यह तो मर गया है।

अतुलने कुत्तेको ध्यानसे देखा, कहा,

'यह तो लालू है। इसी गांवका। मालूम होता है, जो कुछ बच वह भट्टाचार्यजीने इसे दिया।'

धीरेनने कहा—हम भट्टाचार्यजीको छोड़ गये, लेकिन इस साथ नहीं छोड़ा।

दिल्लीमें गांधीजीका भाषण था! उन्हें देखनेके लिए श्रद्धा अपने गांवसे चल चुकी थी।

—?— —?— —?— —?—

दस मील चलकर श्रद्धा दिल्लीमें पहुंच गयी। पूछती-पूछती वह उस मैदानमें पहुंची, जहां गांधीजीका भाषण था। इतने आदमी उसने न देखे थे, इतने सफेद और रंग-विरंगे कपड़े भी न देखे थे। इतने आदमियोंके होते, इतनी शान्ति भी न देखी थी।

भीड़के बीचोबीच श्रद्धाकी धुंधली आंखोंको एक चौकी-सी दिखायी पड़ी। उसपर बहुतसे लोग बैठे थे। एक आदमी खड़ा कुछ कह रहा था। भीड़में बीच-बीचमें बांस गड़े थे, उनमें कोई चीज—गोल और लम्बी बँधी थी। वह वैसी थी जैसी गांवके चमार ब्याह-शादीमें बजाते हैं। उसमेंसे आवाज निकल रही थी। उसे श्रद्धाने कुछ देर सुना, कुछ समझमें न आया। सारे लोग बीचकी चौकीकी ओर मुंह किये बैठे थे। बहुत खड़े भी थे, पेड़ोंपर भी चढ़े बैठे थे। अगल-बगलके मकानोंपर भी आदमी ही आदमी दिखायी पड़ते थे।

श्रद्धाने अपने आगेके एक आदमीसे पूछा—गांधी कहां है?

उस आदमीने घूमकर देखा—एक बुढ़िया खड़ी थी। वह पिंडलियों-तकका एक घेरदार घाघरा पहने थी—उसके रंगका पता न चलता था। उसके पैरोंमें चांदीके कड़े थे, उनके कारण एड़ीके ऊपर चार-चार अंगुल चमड़ा काला और कड़ा पड़ गया था। पैरों और घाघरेपर धूल जमी थी। पैरोंपर कहीं पानीके छींटे पड़ गये थे, जहां-तहां चमड़ीकी झुर्रियां देख पड़ती थीं। उसके पोपले मुंहवाली गर्दन जरा हिल रही थी, मुंहपर पसीना था, हाथमें लाठी। केश लटे, गलेमें एक मैली चादर।

उस आदमीकी गांधीजीके प्रति श्रद्धा उभर आयी। केवल 'गांधी' कहनेवाली बुढ़ियाको उसने घृणासे देखा, जेबसे तह किया खद्दरका रूमाल निकालकर नाकपर रखा और वहांसे ५-७ हाथ हटकर खड़ा हो गया।

भाषण सुननेमें दूसरेने बाधा पाकर, खीझकर कहा—वह क्या रहे ! (बीचकी चौकीपर खड़े व्यक्तिकी ओर संकेत था।)

बुढ़िया श्रद्धा भीड़में धँसने लगी। उसके घाघरेके स्पर्शसे लोग चौंकने और सिमटने लगे। कहींसे दो स्वयंसेवक निकल आये। बुढ़ियाको पकड़कर भीड़से बाहर निकाला ! बुढ़ियाने कहा—गांधीके पास ले चल बेटा !

स्वयंसेवक उसे भीड़से बहुत दूर ले गये। घासपर बैठाकर कहा—यहीं बैठी रह। यहीं गांधी तुमसे मिलने आवेगा। उठना मत यहांसे।

श्रद्धा पुलकित हो गयी।—बड़ा अच्छा आदमी है गांधी, मिलने आवेगा। दूसरे क्षण उसने कहा—नहीं, नहीं ! मैं ही चलूंगी।

पर स्वयंसेवक उसी बीच कोई अन्य सुव्यवस्था करने चले गये थे। हारकर श्रद्धा वहीं बैठी रही। उसे डर लगा कि यहांसे हटनेसे शायद गांधी न मिले, वह तो यहीं आवेगा। दो बेटे जो मुझे यहां बैठा गये हैं, वे खबर देने गये होंगे। श्रद्धा उन्हें अंतःकरणसे असीसने लगी।

बहुत देर हो गयी। सुननेवाले बीच-बीचमें कुछ चिल्ला उठते थे। अन्तमें वे सब बड़े जोरसे चिल्लाये और उठकर चारों ओर बिखर चले, जैसे किस गुड़की डलीपर हजारों चींटियां बैठी हों, उसे हिला देनेसे वे चारों ओर फैल जाती हैं। पर जैसे डलीपर भी कुछ चींटियां चढ़ी ही रहती हैं, वैसे ही—चौकीके आसपास बहुत लोग घूमते-फिरते रहे। फिर वे भी एक ओर चल दिये।

—क्यों ? थैली देगी ?

—अबतक कहां थी ?

—बापू गये।

—अब नहीं मिलेंगे।

—हां, हां, दिल्लीसे गये।

—गये री ! गये ! उफ रे ! मानती ही नहीं।

—सम्हालके रायसाहब ! धीरेसे उतारना लाउडस्पीकर ! क्या बात है ! कमालकर दिया लेक्चरमें ! !

श्रद्धा धपसे बैठ गयी। उसकी आंखोंसे आंसू बह चले। देवता आया और चला गया। वह डरा क्यों ? उससे कोई वरदान भी तो नहीं मांगना था।

वे भी चले गये, जिनके जिम्मे देवताका आसन बिछाना था। श्रद्धा उठी,—कहां बैठा था गांधी ? कौन जाने।

श्रद्धाने वहीं झुककर जमीनपर माथा टेका, घासपर कुछ खारे और तरल मोती छोड़े और सांस लेकर लौट पड़ी।

—?— —?— —?— —?—

श्रद्धा बीमार है, महीने भरसे। पांच-सात दिनोंसे हालत ज्यादा खराब है। वह जबसे बीमार है, जोत पड़ोसीके यहां खाता है। वहींसे उसकी दादीके लिए दूध आता है, कुछ दवा भी आती है। दिल्ली और पंजाबके गांवोंमें इस तरहकी सेवा करना कर्त्तव्य होता है, अहसान नहीं।

जोतने दूधका कटोरा वापस दिया तो पड़ोसिन चाचीने पूछा—जोत रे ! क्यूं. (क्यों) ?

जोतने कहा—नहीं पींदी (पीती)।

चाचीने हाथका काम छोड़ दिया, जोतको लेकर उसकी दादीके पास आयी। पर, दादीकी आंख लग गयी थी; अतः वह लौट गयी।

आधी रातके आसपास दादी कहरने लगी। जोत उठकर बैठ गया।

दादी क्षीण आवाजमें कह रही थी—गांधी, गांधी।

जोत कई दिनोंसे 'गांधी' सुन रहा था। इसका कारण भी उसने चाचीसे सुना था। चाचीने यह भी कहा था कि गांधीजी दिल्लीमें घनश्यामदास बिड़लाके यहां ठहरते हैं।

एकाएक जोतने एक निश्चय किया। उसने अपनी सिरहानेसे टटोलकर अपनी शतच्छिद्र बगलबन्दी उठाकर पहनी, जिसका एक हाथ था, एक नहीं। तीन-चार हाथ लम्बा, बुरी तरह फटा, कपड़ेका एक टुकडा लेकर सिरपर बांधा, और चप्पलकी शक्ल-सूरतका देशी जूता पहनकर अंधेरे ही में दरवाजा खोलकर बाहर निकल पड़ा।

कोई डेढ़ कोस चलनेके बाद जोत उस कच्ची सड़कपर पहुँचा जो रोहतकसे होती हुई आती है और दिल्ली चली जाती है। अब उसे जरा जाड़ा मालूम होने लगा। उसने दोनों हाथोंकी मुट्ठियां बांधकर दोनों बगलोंमें उन्हें दबा लिया और तेजीसे आगे बढने लगा। उसे सुबह होनेके पहले लौट भी आना है।

और कोस भर जानेके बाद वह दौड़ने लगा, जल्द पहुँचनेके लिए। दिल्ली कही भी हो, वह सड़क तो पहुँचा ही देगी।

सड़क खूब ही ठण्डी थी, हवा तेज न थी पर चुभनेवाली थी। जोत बीच-बीचमें जीभ निकालकर दोनों तरफ मोड़कर गालोंका कुछ हिस्सा छू लेता था, वे उसे भींगे और जीभको सुखद मालूम होते थे। वह नाक छूनेकी चेष्टा भी करता था।

पीछेकी ओरसे एक आवाज आने लगी। जोतने ध्यान देकर सुना, खड़े होकर सुना। यह घोड़ेकी टापोंकी आवाज थी। आवाज धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी। तांगेका लम्प दिखायी पड़ने लगा। तांगेकी छाया धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। घोड़ेकी पीठपर चमड़ेकी लगामके उछल-उछलकर गिरनेकी आवाज भी सुन पड़ने लगी। घोड़ेके पेटका पानी हिलनेका शब्द भी सुन पड़ने लगा। तांगा जोतके पास रुक गया।

तांगेवालेने कर्कश स्वरमें पूंछा—कौन है?—और कम्बलकी घोघी

मारे तांगेवाला नीचे उतर आया। दस-एक बरसके जोतकी बोली बन्द हो गयी। तांगेवालेने पुचकारकर पूछा। जोतके दिलकी बात एक-एककर उसने निकाल ली। तब जोतका हाथ पकड़कर उसे तांगेपर चढा लिया। अपने कम्बलमें दुबकाकर उसने तांगा बढ़ा दिया। जोत सुनने लगा—सुसरे—दिल्ली चले हैं बिड़लोंसे मिलने। ऐसे-ऐसोंसे मिलेंगे बिड़ले! उल्लूके पट्ठे! चल, पहुँचा देता हूँ फाटकपर, मिल लेना।

\+ + + +

सवेरा हो चुका था। बिड़ला-निवासका फाटक खुल चुका था। दो सन्तरी—शीतसे पूरी तरह शरीरको छिपाये फाटकपर खड़े थे। अकस्मात् वे सजग हुए। भीतरसे एक मोटर धुंआ देती बाहर निकली।

जोत झपटकर आगे दौड़ा—बापूजी! बापूजी!

ड्राइवरने कौशलसे मोटरको एक ओर मोड़ न दिया होता तो जोत अबतक अपने बापके पास नहीं तो अस्पताल तो पहुँच गया होता। कौन जाने!

मोटर रुकी। उसमेंसे एक पुरुष बाहर निकला। उसने पूछा—क्या है?

जोतने कहा—घनश्याम बापूजी कहां है?

—क्यों?

—गांधी कब आवेगा?

वह पुरुष कुछ क्षणों जोतके बहते आंसू देखता रहा, कुछ सोचता रहा। तब उसने जोतका हाथ पकड़ा और फाटककी ओर चला।

जोतने सन्तरियोंको दिखाकर कहा—नहीं जाने देते, मारा।

जोत सिसकियां ले रहा था। वह पुरुष उसे भीतर ले गया। बैठाकर उसकी कहानी सुनी। एक नौकर खानेका कुछ सामान लाया। जोतने छुआ भी नहीं। तब उस पुरुषने कहा—'खाले, नहीं तो गांधीजी नहीं आवेंगे। जोतका हाथ खानेकी ओर बढ़ा।

गांवके बच्चों, स्त्रियों और पुरुषोने मोटरको घेर लिया। उसमेंसे एक पुरुषके साथ जोतको निकलते देख उन्हें आश्चर्य हुआ। वे बहुत देरसे जोतको ढूढ़ रहे थे।

जोतने इस पुरुषका हाथ पकड़ा और अपने घर ले गया। दादीने क्षीण कण्ठमें पूछा—कहां था रे?

जोतने कहा—दादी! घनश्याम बापू!

दादीने देखा, पर वह तो गांधी नही था। जोत ही ने तो कहा—घनश्याम बापू!

घनश्याम बापूने कहा—दादी! गांधीको देखेगी?

वृद्धाकी आंखोमे प्राण खिच आये। आग्रहसे कहा—हां!

—क्यों?

वृद्धाने उत्तर दिया ही नही। वह क्यों देखना चाहती है? वह अपने ही से पूछने लगी।

घनश्यामने कुछ समझा, कुछ नही समझा! पर यह समझा कि वह देखना चाहती है।

उन्होंने कहा—गोदान करेगी? गैया, गैया,

दादीने कहा—मेरे गैया नही।

—मै दूगा।

—मै क्यों लूगी?

—और कोई काम?

श्रद्धाने आंखें बन्द कर ली, और करवट फेर ली।

—अच्छा, अच्छा, गांधीजी आये तो कोशिश करूँगा।

मोटरके भीतर और ऊपर बैठे बच्चे कठिनतासे हटाये गये। मोटर चली गयी।

दादीने पूछा—कहां गया था रे जोत?

—दिल्ली।

—क्यों ?

—जोत मौन।

—घनश्याम बापू कहां मिले ?

—उन्होंने मुझे खुद देख लिया।

और जोत दादीकी रजाईमें दुबक गया।

\+ + + +

दो दिनों बाद।

सुबह चार बजे कानपुरकी ट्रेन दिल्लीके निजामुद्दीन स्टेशनपर
एक डब्बेकी ओर सैकड़ों आदमी दौड़ पड़े। सबसे आगे घनश्यामदा

गांधीजीके पैर छूकर उन्होंने पूछा—आज ठहरेंगे ?

गांधीजीने कहा—ठहरना मुश्किल है।

दो-चार इधर-उधरकी बातोंके बाद ही गांधीजीने पूछा—
क्यों पूछते हो ?

कारण सुनकर गांधीजी उठ खड़े हुए। रेलसे बाहर नि
कहा—चलो।

—पर ऐसी तेज हवामें आपको कैसे ले चलूं ?

—इसकी चिंता छोड़ो। समय खोनेसे क्या लाभ ?

घनश्यामदासने वृद्धाके दरवाजेपर थपकी दी। एक आदमी
खोला और उन्हें पहचाना। गांववाले जल्दी भूलते नहीं।

वह आदमी पीछे हटा। घनश्याम आगे बढ़े, गांधीजी
श्रद्धा खाटपर पड़ी थी। तेज सांस चल रही थी। बीच-
गांधी कहती थी।

गांधीजीने उसे ध्यान से देखा। उसके माथेपर हाथ
स्पर्शसे श्रद्धाने आंखें खोलीं। घनश्यामने झुककर कहा—गां

श्रद्धाने उठनेकी चेष्टा की, उठ न सकी। उसकी
घनश्यामने सरसोंके तेलका दीपक उठाकर पास किया !

गड़ाकर कुछ देर गांधीजीका मुंह देखा। फिर उसकी आंखोंसे आंसू बह चले। उसने आंखें बन्द कर लीं, उसकी सांसकी तेजी जाती रही। उसके ओठोंमें मुसकान खेल गयी।

गांधीजीने ध्यानसे देखा, कहा—सो गयी। अच्छा, चलो।

बाहर निकलते-निकलते उन्होंने पूछा—जोत कहां है? मुझे यहां बुलानेवाला?

दरवाजा खोलनेवाले व्यक्तिने दिखलाया। गांधीजीने जोतके चेहरे-पर कुछ क्षणों अपनी मर्म-भेदिनी दृष्टि डाली। जोतके अधरोंपर भी मुसकान थी। वह गहरी नींदमें था।

———:०———

उपसंहार

कविने यौवनोल्लास-भरे स्वरमें पुकारा—एह्येहि नितंबिनि !

सामने ही कविकी प्रेयसी-पत्नी चली आ रही थी। उसके हाथमें शराव (मिट्टीका प्याला) था, उसमें था पृपातक (दधिमिश्रित घृत), दूसरेमें थी शर्करा।

कविके सामने दोनों वस्तुएँ रखकर उसने कहा—आज यही प्रातराश (जलपान) करो।

कविने पृपातकमें शर्करा मिश्रित करते हुए कहा—चारुलोचने ! जरा बैठो, यह..........

प्रेयसी–पत्नीने लोचनोंसे १७६ डिग्रीका कोण बनाते हुए कहा—महानस (रसोईघर)में अग्नि प्रज्ज्वलित है, चटपट भोजन बना दूं, नहीं तो आज भी विक्रमकी सभामें वैसे ही जाओगे और लौटकर कहोगे कि आज अच्छी कविता नहीं बनी।

कवि कालीदासने कहा—सुश्रोणि ! यह तो ठीक है, पर मैं तुम्हें मेघदूतका उपसंहार सुनाना चाहता था। कई दिनोंसे सभा उत्सुक है, पर तुम जबतक न सुन लो..........

प्रयसी–पत्नीने कविका हाथ पकड़कर कहा—तो उत्तिष्ठ ! महानसमें ही चलो, यह धवित्र (मृगछालाका पंखा) लेते चलो।

कविने पत्नीका ललामक (ललाटपर लटका फूलोंका गुच्छा) छूते हुए कहा—अहो ! किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ! !

पत्नीने दिखावटी झुंझलाहटसे कहा—हरवक्त यही सब अच्छा नहीं लगता।

कविने अनुनयसे कहा—फिरसे कहो वाले ! इसपर तो एक कविता....

पर, वाक्य पूरा होनेके पहले ही पत्नीने उन्हे खीचकर उठा दिया और महानसकी ओर ले चली।

महानसमें प्रविष्ट होते हुए कविने कहा--यहां तो धूम्र बहुत है।

पत्नीने उत्तर दिया--गवाक्ष (झरोखा) के निकट ही यक्षधूप (राल) और तुरुष्क (लोहवान) है, थोड़ा अग्निमे डाल दो और धवित्र तो तुम्हारे हाथमें ही है।

कविने बैठकर जब भोजपत्र हाथमे लिए तो प्रेयसीने पूछा---लेकिन उपसंहारकी आवश्यकता क्या थी ?

कविने मुस्कराकर कहा---सुननेके पहले ही आलोचना न कर, अनड्वान् दिङ्नागसे अपना पार्थक्य बनाये रखो। तो सुनो---

मेघदूतको भेजनेके बाद एक दिन विरही यक्ष रामगिरि-आश्रममे प्रेत जैसा बैठा था। शीतल, अतएव असह्य समीरका संचार हो रहा था। बलाकापंक्ति आकाशमे उड़ी जा रही थी। तभी एक हंस आकाशमे कई मण्डल घूमकर नीचे उतरा और यक्षसे नातिदूर बैठ गया। बैठते ही उसने शैवाल-कषाय कण्ठसे कहा--यह तुम्हारा कैसा असत्य प्रचार है, यक्ष ! तुमने मेघसे कह दिया कि हंस वर्षामे मानसरोवर चले जाते है। अब कोई हमें यहां टिकने नही देता। आकाशसे नीचे उतरते ही लोग शतपर्ण (बांस)की खपाची लेकर खोंचने दौड़ते है। कहते है—जा मानसरोवर !

यक्षने कहा—आहा ! इतना क्रोध क्यो ? वह तो तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए कहा है।

हंसने कहा—तुम मूर्ख हो। तुम्हारी मूर्खताका फल हम भोग रहे है। अब हमें दिनभर उपवास करना पड़ता है। रातको छिपकर शैवाल आदि खाते है। तुमने यह भी तो कह दिया न कि हंस मोती चुगता है !

यक्षने कहा—इससे तुम्हारा नाम अमर हो जायगा।

हंसने घृणासे गला फुलाकर कहा—नाम भले ही अमर हो जाय, पर हम तो आयु पूरी होनेके पहले ही चल बसेंगे। मूर्ख !

यक्षने पूछा—तुम मुझे वात-वातमें मूर्ख क्यों कह रहे हो ?

हंसने कहा—और क्या कहूँ ? अरे, मेघको दूत वनाया। यह न सोचा कि रास्ते हीमें वह कहीं वरस पड़ा तो नाम-शेप हो जायगा। मेरा तो खयाल है कि वह समाप्त हो चुका होगा।

यक्ष घवराकर उठ पड़ा, वोला—उचित कहते हो। तुम हंस क्या राज-हंस हो।

हंसने कहा—जरा दूर हीसे वातें करो। मुझे कोई वात तुम्हारे कानमें नहीं कहनी है। और यह चाटुकारिता क्यों शुरू कर दी ? कोई अभिसंधि है क्या ?

यक्षने कुछ लज्जित होकर कहा—कोई खास वात नहीं। मेरे भवनके भीतर एक भारी सरोवर है। उसे साफ कराकर उसमें मोती छिटवा दूंगा। तुम उसीमें रहना। पत्नी तो है न तुम्हारी ?

हंसने दुःखसे कहा—थी तो, लेकिन.....वह इस बार मानसरोवर जानेकी जिद कर वैठी। मैं नहीं गया, केवल उसे शासित करनेके लिए। उसके जानेके वाद सुना कि मेरा परममित्र अरुणचंचु भी विरक्त होकर कहीं चला गया है। अव सोचता हूँ कि मैं भी चला जाता तो अच्छा रहता।

यक्षने आश्वासन दिया—कोई वात नहीं। शाकुंतिक (वहेलिया) चिरजीवी हों, मैं १५१ हंसी पकड़वा मंगवाऊँगा। उन्हें भी उसी सरोवरमें छुड़वा दूंगा।

हंसने प्रीत होकर कहा—तुम्हारी इस अनुकम्पामें स्वार्थ है, यह तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, पर १५१ हंसललनाएँ! अच्छा तो अब झटसे कह दो, इसके बदले मुझे क्या करना होगा ?

यक्षने कहा—तुम वस एक वार उड़ो और मेरे भवनतक जाओ!

मार्ग सुनो—गन्तव्या ते

वसतिरलका

हंसने रोककर कहा—नष्ट करनेको मेरे पास समय नहीं। रास्ता

में जानता हूँ, बल्कि एक संक्षिप्त मार्ग (शार्टकट) भी जानता हूँ। तुम्हारे घरका निशान भी जानता हूँ। तुम मेघसे जब 'त्राहि मधुसूदन' वाले ढंगसे चीत्कार करके कह रहे थे, तब में सुन रहा था। अच्छा तो अब मैं चला। तुम महीने भर जरा आराम कर लो। और हां, शरीरकी ओर जरा ध्यान देना, २-४ महीने ही तो अवधिमें बाकी हैं।

हंस उड़ा तो यक्षने कहा—शुभास्ते सन्तु पन्थानः! जाओ, पुनरागमनाय च।

हंसने ऊपरसे पूछा—कोई खास बात कहनी है?

यक्षने कहा—अब तो मैं जाकर खुद ही कह लूंगा। तुम तो चर (जासूस) की तरह जाओ।

महीने-भर यक्ष हंसका आसरा देखता रहा। हंस तीसवें दिन ठीक समयपर आकाशसे उतरा। वह यक्षकी ओर बढ़ा। यक्ष हंसकी ओर करुण दृष्टिसे देखने लगा।

फिर यक्ष चिल्लाया—स्वागतं भोः स्वागतम्।

हंसने कहा—अपने लिए भोसे हे मुझे अधिक पसन्द है। अच्छा तो जरा दूर बैठ जाओ तो मैं कहूँ।

यक्ष लाचार होकर ८-१० हाथ दूर बैठ गया।

हंसने कहा—भो-भो मिथ्यावादिन्! तुम्हारे भवनमें सरोवर कहां है? वहां तो एक विशाल गड़हिया है। उसमें शंबुक, शैवालका ढेर है और बक उसमें दिनरात 'हीं-ही' किया करते हैं।

यक्षने कहा—पहले मेरी एक—वेणीधराका हाल कहो।

हंस बोला—मैं जैसे कहता हूँ, वैसे सुनो। मैं रातको वहां पहुँचा। घोर अन्धकार था। 'शिवशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या' अलका कोई दूसरी होगी। खैर, मैं पहुँच गया भवनके भीतर। मुझे देखकर सबको बहुत आनन्द हुआ। एक दासीने कहा—स्वामिनि! हंस, हंस!

तभी स्वामिनी भी दौड़ी आयी। नितम्ब-भारके कारण तेज नहीं दौड़

सकती थी। मैंने उसे ध्यानसे देखा। तुमने जैसा वर्णन किया है, वैसी तो नहीं है; पर खासी है।

उसने अपने भरे, गोल, चिक्कण हाथोंमें मुझे उठा लिया और भीतर ले गयी। वह मुझे अपनी गोदमें लेकर वैठी। दो दासियां उसका प्रसाधन करने लगीं। उसका तैल-सिक्त केशपाश वार-वार मुझपर गिरने लगा। दासियोंने उसकी ३-४ वेणियां वनायीं, उनमें फूल गूंथे।

यक्षने आंखें फैलाकर कहा—तुम किसी दूसरे भवनमें चले गये।

हंसने कहा—नहीं! एक दासीने कहा कि देव इस समय रामगिरिपर क्या करते होंगे? दूसरीने कहा—भले गये! दिन रात तंग करते रहते थे!

सुनकर स्वामिनी हंसी। वह हँसी अच्छी लगी थी, यक्ष!

यक्ष सिर नीचा किये वैठा था। मुंह ऊँचा करके कहा—फिर?

हंसने कहा—दासियोंने वेणियोंको अगुरु और कस्तूरीकी धूप दी। हाथोंमें कंकण, गलेमें कह्लारकी प्रालंबिका (लम्बी माला) पहनायी, कपोलोंपर चन्दनका स्थासक लगाया, पैरोंमें हंसक पहनाये, वस्त्रोंपर सुगन्धि-चूर्ण छिड़का और—

यक्षने कहा—संक्षेपमें कहो।

हंस बोला—एक दासीने मद्य-पूर्ण चषक दिया जिसे वह एक घूंटमें ही पी गयी। चषक फिर भरा गया। वह भी रिक्त हो गया। चषक तीसरी बार भरा गया। तभी प्रतिसीरा (यवनिका) हटाकर एक सुन्दर यक्ष वहां प्रविष्ट हुआ। उसे देखते ही स्वामिनी उछलकर उसकी वांहोंमें जा गिरी—

यक्षने कहा—अलं हंस!

हंसने कहा—अलं कैसा? मैं जो गोदसे गिरा तो ऐसी चोट लगी कि क्या कहूँ।

यक्षने कहा—यह वृत्तान्त किसीसे कहना नहीं। आओ, गले मिलकर प्रतिज्ञा करो।

हंसने कहा—मैं यों ही प्रतिज्ञा करता हूँ। और सुनो, अव मैं तुम्हारी

गड़हियामें नहीं जाऊँगा। मैं तो मानसरोवर चला। नयी खोजनेसे पुरानी-को मना लेना अच्छा है। नयीका भी क्या ठिकाना ? तुम भी जाकर उसीसे दिल बहलाना। न मन माने तो नयी सही। मैं देख आया हूँ। बहुत-सी मिल जायंगी।

एकाएक यक्ष हंसपर झपटा। हंस सावधान था। तुरत उड़कर उसकी पहुँचके बाहर हो गया। वहींसे बोला—डटकर भोजन करो। जामुन यहां बहुत हैं, उनका आसव बना लो। तगड़े होकर जाना। शायद प्रतिद्वंद्वीसे मोरचा लेना पड़े।

कवि उपसंहार सुनाकर चुप हो गये। प्रेयसीने गलेमें हाथ डालकर कहा—सुन्दर।

प्रेयसी भोजपत्र हाथमें लेकर देखने लगी। सहसा उसने उन्हें आगमें झोंक दिया।

कवि किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। किसी तरह बोले—अविचारशीले ! यह क्या ?

प्रेयसीने भीषण भृकुटि-भंगकर कहा—अभागे ! मूर्ख ! भविष्यमें ऐसी कविता करनी हो तो घरमें दो सम्मार्जनी लाके रखना।

कविने उसांस लेकर स्वगत कहा—नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रने-मिक्रमेण।

———:०:———

साधु और कंचन

पंजाबके एक गांवमें एक दिन एक साधुजीका दर्शन हुआ। उनकी उम्र २४-२५ वर्षकी थी; सिरपर कोई दो वित्तेके रुक्ष केश थे। वे एक कौपीन और उसपर घुटनोंतकका एक दो हाथका टुकड़ा पहने थे, उनके हाथमें एक चिमटा था। उनके चेहरेपर क्लान्ति स्पष्ट थी।

वे गांवमेंसे होकर, उसके बाहर निकले। वहां एक बड़ा तालाब था और उससे कुछ दूरपर एक शिव-मन्दिर। उसके बाद थोड़ा जंगल था।

साधुजी मन्दिरके दालानमें आये, चिमटा रख दिया और बैठ गये।

वह गांव प्रायः सम्पन्न व्यक्तियोंका था। लाला रामसरन भी वहीं रहते थे। वे लखपती थे; उनके पुत्र लाहौर, पेशावर और काबुलमें व्यापार करते थे। उनकी लड़की कंचन चौदह बरसकी उम्रमें विधवा हो गयी थी, चार बरस पहले; विवाहके तीन मास बाद। तभीसे वे शहरमें रहना छोड़ यहीं रहने लगे।

लालाजी घरसे कम निकलते थे। शामको उन्हें साधुजीके आगमनकी बात मालूम हुई। वे कुछ सोचने लगे। रातको आठ बजते-बजते वे उठे, एक डोलचीमें कुछ खानेका सामान लिया, एक हाथमें लालटेन ली और बाहर निकले।

लालटेनके प्रकाशमें लालाजीने देखा—साधुजी मुड़े-तुड़े सोये हैं। लालाजीने अपना कंबल उतारकर धीरेसे उनपर डाल दिया। ३-४ मिनट बाद साधुजीने अपने मुड़े हुए पैर जरा लम्बे किये और उनकी आंखें खुल गयीं। वे उठ बैठे। लालाजीको देखकर वे कुछ संकुचित हुए, कंबल शरीर परसे दूर कर दिया।

लालाजी बैठ गये; खानेका सामान साधुजीके सामने रखा। साधुजी-

ने बहुत थोड़ा-सा लेकर खाया; जाकर तालाबमें पानी पिया और आकर बैठ गये।

लालाजीकी आंखोंमें ममत्व भरा था; उन्होंने पूछा--किधरसे आये हो ?

साधुजी चुप बैठे रहे। लालाजीने उनपर फिर कंबल डाला। साधुजीके नेत्रोंसे टप-टप पानी गिरने लगा; पर उन्होंने कंबल दूर रख दिया।

हारकर लालाजी कंबल हाथपर रखकर लौट आये। मनमें उन्होंने कहा---बड़ा जिद्दी लड़का है।

\+ + +

एक बरस बीत गया। साधुजी वहीं है। उनके सामानमें एक कौपीन और उसपर पहननेके एक टुकड़ेकी वृद्धि हुई है। वे बोलते नहीं। अपने स्थानसे उठकर कहीं जाते नहीं। सायं-प्रात: गांवके तथा आस-पासके लोग आते हैं; साधुजीको प्रणाम करते है; कुछ देर बैठते हैं और चले जाते है। साधुजीके त्यागका सिक्का सबके दिलोंपर है।

स्त्रियां भी आती हैं। वे पुरुषोंसे अधिक दुराग्रही है; ज्यादा देर बैठती हैं, साधुजीका आशीर्वाद चाहती हैं, धन चाहती है, उपदेश चाहती हं, पुत्र चाहती हैं, पतिको वशमें करना चाहती है। साधुजी बोलते नही। एक निगाहसे ज्यादा किसी की ओर देखते भी नहीं।

दो-चार दिनोंसे विशेषत: स्त्रियोंकी श्रद्धा बहुत बढ़ गयी है। उस गांवकी एक महिला अपने नन्हेंसे बच्चेको गोदमें लिये आयी थी। बच्चा बीमार था। उसने बच्चेको साधुजीके पैरोंपर डाल दिया और रोने लगी। साधुजीने बच्चेको उठाया, उसे चुमकारा; उसे गोदमें लिए हुए शिवजीके सामने आये; उसे शिवजीके सामने डाल दिया। उनके नेत्रोंसे जल बहने लगा। ५-७ मिनट बाद उन्होंने बच्चेको उठाया और उसकी माताको दे दिया। दूसरे दिनसे बच्चा अच्छा होने लगा।

साधुजी अन्यमनस्क बैठे थे। इसी समय कुछ स्त्रियोंने पाससे प्रणाम किया। साधुजीने उनकी ओर देखा। वे चौंक पड़े, उनके चेहरेका रंग बदल

गया, उनकी सांस रुकी, फिर जोरसे चलने लगी। वे कुछ कांपने लगे; फिर उनकी आंखें लाल हो गयीं, वे उठ खड़े हुए और एक की ओर देखकर, ऊँचे, कांपते स्वरमें बोले—दूर करो इसे ! हटाओ, हटाओ ! यह कभी मेरे सामने न आवे ! मैं चला जाऊँगा। मैं.............

सब लोग चौंक पड़े। आज साधुजी पहली बार बोले थे। उनकी मीठी पर तेज आवाजने कानोंसे घुसकर सबके हृदयोंपर एक धक्का मारा। सबके नेत्र उस स्त्रीकी ओर घूमे। वह कंचन थी। वह आज पहली बार आयी थी।

साधुजी सिर नीचा कर बैठ गये, उनका सिर कांप रहा था, वे रो रहे थे।

कंचन स्तब्ध हो गयी; उसके चेहरेका रंग उड़ गया, फिर वह लाल हो गया। तब उसका शरीर कांपने लगा। वह एकाएक पीछे घूम पड़ी।

उसकी भाभीने उसका हाथ पकड़ा—उसे संभालकर वह आगे बढ़ी।

कुछ दूर जाकर कंचनके पैरोंने जवाब दिया। वह गिरती-सी बैठ गयी और फूट-फूटकर रोने लगी।

\+ \+ \+

रात आधीके आसपास थी। कंचन रो रही थी—मैं क्यों गयी ? मैंने क्या किया उनका ? मैंने क्या बिगाड़ा ? मुझे क्यों...........

भाभीने कहा—रो ना ! मैं पता लूंगी, चुप कर।

गांवभरमें इस बातकी चर्चा थी। कंचनकी भाभी रोज जाती थी। वह सबसे पीछे आती थी। एक दिन उसने साहस करके पूछा—महाराज ! मेरी बहिनको क्यों आपने दुतकारा ?

साधुजी कुछ बोले नहीं। भाभीका साहस उभर आया। वह रोज पूछने लगी। एक दिन साधुजीने कहा—किसीसे कहेगी तो नहीं ? वह मेरे पहले जन्मकी पत्नी है। उसने एक आदमीसे प्रेम किया। उसी पापसे

वह विधवा हुई। उसे देखकर मेरा मन कैसा-कैसा हो गया। उसे कभी मेरे सामने मत आने देना।

भाभीकी संज्ञा लुप्त होने लगी। बहुत देर वह चुप बैठी रही। फिर उठ आई। कंचनसे उसने कहा। सुनकर वह सहम गयी। उसे अपने मृत पतिपर अपार घृणा हो आयी। वह रोने लगी। उसके ध्यानमें साधुजीका सुन्दर मुख बार-बार आने लगा। उसका मन हजारों परदे भेदकर पूर्वजन्मकी ओर दौड़ने लगा।

कंचन बहुत बदल गयी। वह पूजा-पाठ थोड़ा-बहुत रोज करती थी। उसमें एक क्रम था, वह विच्छिन्न हो गया। इस पर कंचनका ध्यान न था, यह भाभी देखती थीं; पर उस समग्र पाठ-पूजामें कंचनके सामने किसकी मूर्ति रहती थी और कंचनके आंसू भक्तिके थे या किस भावके, यह भाभी कैसे जानती?

कंचन क्षीण हो चली, उसके शरीरपर एक सुहावना पीलापन उतर चला; यह भी भाभीकी नजरोंसे छिपा न रहा। कंचनकी नींद अब एक ही करवटमें समाप्त नहीं होती, कंचनके कौर भी कम हो गये हैं।

एक दिन भाभीने पूछा—कंचन! चलेगी?

कंचन कांप उठी, आंसू उमड़ आये, बोली—ना।

उसी दिन भाभीने साधुजीसे अनुनयकी—एक दिन ले आऊँ?

साधुजी चुप रहे।

दूसरे दिन भाभी अकेली न गयी। साधुजीने कंचनके अश्रु-धौत मुखपर एक दृष्टि डाली, और मुंह फेर लिया। कई दिन यही क्रम चला।

इसके बाद एक दिन कंचन रुक न सकी। वह बढ़कर साधुजीके पैरोंपर गिर पड़ी; उसकी सिसकियां भाभीका हृदय मथने लगीं। साधुजीने हाथ उठाकर कंचनके माथेपर रखा, वह कांप रहा था। फिर साधुजी एकाएक उठे और शिवजीके सामने जाकर बैठ गये।

इसके कई दिन बाद कंचनने दो मिठाइयां साधुजीके सामने कांपते

हाथों रखीं। साधुजी चुप बैठे रहे, कुछ देर बाद उन्होंने एक मिठाई उठायी, आधी खायी और उठ गये।

कंचनने उधर देखा। साधुजी बाहर जा रहे थे, भाभी उधर ही देख रही थी, कंचनका हाथ उठा और साधुजीकी उच्छिष्ट मिठाई उसके मुंह-में थी।

और एक दिन। साधुजी खा रहे थे। भाभी लोटा लेकर तालावपर गयी। लौटते हुए उसने देखा, साधुजी कुछ कह रहे हैं, कंचन रो रही है।

इसके बादसे वह कंचनको कुछ समय किसी-न-किसी प्रकार देने लगी। कई महीने बीत गये।

रात आधीसे ऊपर थी; भाभीको कुछ आवाज सुन पड़ी। वह झपटकर उठी, देखा—कंचन दबे पांवों नीचे उतर रही है।

भाभीने दबे, पर क्रुद्ध स्वरमें कहा—कंचन!

कंचन खड़ी रही। वह रोने लगी। भाभीने कहा—कहां जा रही है? पागल हुई है! आधी रात हो चुकी! चल सो।

कंचन लौट आयी। भाभी उसके पास ही सोयी। कंचन तुरन्त ही सो गयी। भाभीने सोचा, यह निद्रितावस्थामें ही उठ पड़ी थी। पर, वह चिंतित हो गयी। अब, कलसे कंचन हरगिज वहां न जाने पावे। यही सोचते-सोचते उसे नींद आ गयी।

प्रातःकाल भाभी उठी, कंचन पास न थी। थोड़ी देर बाद उसे मालूम हो गया कि वह घरमें नहीं है। वह झपटकर साधुजीके यहां गयी। वे भी न थे। भाभी वहीं लौटकर रोने लगी!

× × × ×

कई महीने बाद।

बम्बईमें एक फ्लैटके द्वारकी बिजलीकी घण्टी किसीने दबायी। भीतर से, द्वारमें कटी जालीमें से, किसीने झांका और द्वार खोल दिया।

बाहरका युवक भीतर चला गया। द्वार खोलनेवाली युवतीने अनुराग-भरी आंखोंसे देखते हुए पूछा---कहांसे हो आये ?

युवकने उत्तर दिया---दुकान देखने गया था। दिनभर घूमा, पर बेकार !

युवती की आंखें सजल हो गयीं। उसने कहा---मेरे लिए तुम्हें इतनी तकलीफ है !

युवकने उसे कोचपर बैठाते हुए कहा---एक बोझ मेरे सीनेपर है। आज सुन ही लो।

दो आग्रहपूर्ण नेत्र ऊपर उठे।

युवकने कहा---तुम कभी सियालकोट गयी थीं ?

'हां, बहुत बरस हुए।'

'वहीं मैंने तुम्हें देखा था। तब भी तुम विधवा थीं; मैं तुम्हें भूल न सका। तुम्हें पानेके लिए ही साधु बनकर तुम्हारे गांवमें गया।'

कंचनने कहा---तुम छलिया हो। मेरे लिए तुमने अपना रास्ता बदला, वही छिपानेके लिए यह झूठ ?

युवकने रोककर कहा---कंचन ! तुम्हारे सिरकी कसम ! मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ।

कंचनने उसके गलेमें बाहें डालकर कहा---तो तुमने तभी क्यों न बताया ? अब मैं अपने दिलका क्या करूँ ?

———:o:———

रातका अतिथि

उस गांवके चारों ओर कोस-कोस भरतक मैदान था, खेत थे। बीच-बीचमें पेड़, झाड़ियां। माघका महीना था। एक आदमी उसी गांवकी ओर जा रहा था। कच्ची पगडंडी ओससे भींग गयी थी, जैसे कूटकर जमायी हुई बरफ। उस आदमीके नंगे पैर तेजीसे उठ रहे थे। वह एक दोहर सिरपरसे ओढ़े था। वह भींग-सी गयी थी। वह किसी नीचे पेड़के नीचेसे निकलता था तो उसकी डालियां उसे छूती थीं और उसके मुंह तथा कपड़ेपर ओसकी बूंदें टपक पड़ती थीं। वह दोहरके भीतरसे ही हाथ उठाकर, उसीसे मुंहपर पड़ी बूंदें पोंछ लेता था; पर वे भींगी दोहरमें समाती नहीं थी, पूरे मुंहपर फैल-सी जाती थीं। उसके हाथमें एक डंडा था, कुछ छोटा। वह घुटनोंसे नीचे, दोहरके बाहर लटक रहा था। उसके नीचेका हिस्सा खूब ठंडा पड़ गया था और वह आदमी उसे पैरसे दूर रखनेकी बात भूलता न था।

इधर-उधर कहीं कोई सियार बोल उठता था। उसके बाद ही औरोंकी आवाजें भी आती थीं। कुत्तोंका शब्द भी कभी सुन पड़ता था।

चांदनी छिटकी हुई थी। दूरके पेड़ एकमें मिले और काले मालूम होते थे। किसी-किसी पेड़पर कोई पक्षी कभी पंख फड़फड़ा उठता था, छोटे बच्चे शब्द कर उठते थे। उस आदमीके सिरके कुछ ही ऊपरसे कई बार कोई रात्रिचर पक्षी सर्रसे निकल गया!

अब खेत समाप्त होनेवाले थे, इसके बाद ही गांव था, कच्चे मकान दिखायीं दे रहे थे। सर्वत्र निःस्तब्धता थी। वह आदमी खड़ा हो गया। उसने आकाशकी ओर दृष्टि की; हां, वह रहे सात ऋषि। उन्हें देखकर उसने अंदाज किया कि रात आधीसे कुछ ऊपर जा चुकी है।

उसके मुंहसे धीरे-धीरे शब्द निकलने लगे—पहले वहां कि इधर?

वह न मिले तो भी यह काम तो करना ही है। इस कामके लिए तो एक कुदाल चाहिये।

वह फिर सोचने लगा—हा, खेतोमे लोग अकसर छोड़ जाते है।

वह खेतोकी ओर मुड़ा। एक खेतके बीचकी पगडडीसे वह आगे बढा। दोनों ओरके हाथ-हाथभर ऊँचे अनाजके पौधे उसके पैरोसे टकराने लगे। उसके दोनो पाव भीग गये, पजे मिट्टीमे सन गये। वह खेतके बीचके पेड़के नीचे पहुँचा। वहा कुछ न था। वह दूसरे खेतकी ओर चला। उसके बीचोबीच कुछ जमीन छोड़ दी गयी थी, वहा कुछ चमका। उसने रास्ता छोड़ दिया, पौवोके बीचसे उनपर पैर रखता हुआ वह उधर ही बढा। वहा दो तीन कुदाल, दो-तीन खुरपिया और दो फरसे पड़े थे। उसने सब कुदालोकी धार देखी, एक पसन्द की और उसे उठाकर वापस चला।

गावके बाहर पश्चिमकी ओर एक मन्दिर था। वह दबे पावो वहा आया, दालानमे किसीको सोये न देख, वह कुछ निश्चित हुआ तब हनुमानजीके सामने आकर खड़ा हो गया। कुछ देरतक वह प्रणाम और ध्यानकी मुद्रामे रहा। तब वहासे हटा और मन्दिरके पिछवाड़े गया। ५-७ हाथ दूर पीपलका एकविशाल पेट था। वह उसके नीचे गया। पेड़का तना कच्चे सूतोमे लिपटा था। वह पेड़के नीचे दक्खिनकी ओर मुह करके खड़ा हुआ, सात कदम चला और रुक गया। तब उसने दोहर उतारकर जमीनपर रख दी, डंडा भी रख दिया। वह एक फतुही पहने था। उसने कुदाल उठायी और कुछ पीछे हटकर खोदना शुरू किया। बीच-बीचमें वह आहट लेता जाता था। तीन-चार हाथ खोद चुकनेपर कुदाल किसी चीजसे टकरायी। उसने कुदाल रख दी और झुककर किसी चीजको दोनो हाथोसे पकड़ा; उसे इधर-उधर हिलाकर ऊपर खींच लिया। वह एक पतीली थी, ढक्कनदार। उसने ढक्कन हटाया, हाथ भीतर डालकर भीतरकी चीजका अनुभव किया और तब फतुहीकी जेबसे कपड़ेका बटुआ निकालकर पतीलीकी चीज उसमें उलटने लगा। थोड़ी देरमें बटुएमें ३-४ सौ गिन्नियां समा गयीं।

तब उस आदमीने पतीली वही छोड़ दी, कुदाल भी; अपना डंडा

गोवरधनने रामलालके कंधेपर हाथ रखकर, उसे नीचेसे ऊपरतक—देखते हुए कहा—१४ साल हो गये, तब तू ८ सालका था।

रामलाल पीछे हट गया। गोवरधनका हाथ गिर गया।

रामलालकी आंखोंके सामने इंद्रजाल हो रहा था। उसने आंखें मलकर देखा। गोवरधनके हाथों और पैरोंमें काले दाग थे—हथकड़ियों और बेड़ियोंके। उसकी आंखें धँस गयी थीं, वे निस्तेज थीं।

रामलालने पूछा—तुम्हें कैसे पता चला?

मुझे छूटे महीनाभर हुआ। डामलसे यहां आनेमें बहुत दिन लगे। परसों रामसूरतसे मिला था। उसने बताया।

कौन रामसूरत?

तू नहीं जानता। मेरा पुराना संगी है।

क्यों आये?

गोवरधनकी गरदन झुक गयी, आंसू बहने लगे—तुझे देखने, तेरे साथ रहने।

रामलालकी आंखें लाल हो गयीं—उसका शरीर कांपने लगा, बोला—मांके हत्यारेके लिए यहां जगह नहीं है।

मेरा कसूर नहीं था। मैंने उसे (थूक घोंटकर) दलपतके साथ एक चारपाईपर देखा तो खून खौल उठा। दोनोंके सिर उतार लिये।

रामलालने कंधेपर हाथ फेरते हुए कहा—तुम तो दूधके धोये थे! तुम्हारे चरित्र क्या किसीसे छिपे हैं?

शादी हो गयी?

हां!

निबाह कैसे होता है?

जमीनसे, ससुरने भी २० बीघा दी है।

अपना गांव क्यों छोड़ दिया?

तुम बहुत सिर ऊंचा कर गये थे न!

ससुरको मालूम है ?

नहीं !

गोवरधन कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—डामलमें जो कुछ देखा, वह पहले देख लेता तो अच्छा होता।

रामलालने कहा—मैं तुम्हें नहीं रख सकता। बड़ी मुश्किलसे वे दिन भुलाये हैं। क्या-क्या नहीं सुना ! कहां-कहांकी खाक नहीं छानी !

गोवरधन लम्बी सांस लेकर रह गया।

रामलाल कहता चला—देस छोड़ना पड़ा, भटकता फिरा, चोरी की; तब यहां आकर बसा। चोरीके रुपयोंसे जमीन खरीदी, बरसों इज्जत बनानेमें लगा रहा। झूठे रिश्तेदार खड़े किये, तब शादी हुई।

भीतरसे चूड़ियां खनकीं। रामलाल भीतर गया। गोवरधनने कान लगाये।

वामा-कंठने पूछा—कौन है ?

मेरे बाप।

पत्नीकी आंखें फैल गयीं। पूछा—कब छूटे ?

कुछ दिन हुए।

क्यों आये ?

रहने।

क्या करोगे ?

तुम्हें तो सब बातें मैंने बता दी हैं, कुछ भी छिपाया नहीं। रहने दूं ?

पत्नीने झनककर कहा—वाह रे रहने दो ? फिर यह बात छिपेगी ?

वही तो सोच रहा हूं।

मुझे तो कुछ नहीं। जैसे रहोगे, जैसे रखोगे, रहूंगी। पर मेरी बहनोंकी शादी कैसे होगी ? हमारे बाल-बच्चे होंगे, उनका क्या होगा ?

और कोई कसूर होता तो मैं सब सह लेता, पर मांके हत्यारेका मैं मुंह नहीं देखना चाहता।

रखनेसे बात फूटेगी ही। फिर वही गड़े मुर्दे उखड़ेंगे। तुमने अपने

बचपनसे यहां आकर बसनेतकका जो हाल सुनाया है, उसे याद करके रोयें खड़े हो जाते हैं।

तब क्या करूँ?

कह दो कहीं शहरमें जिंदगी गुजारें, यहांसे खर्च भेज देना। यहां रहकर फिर तबाह क्यों करेंगे?

हां, खर्च भेज सकता हूँ। पर उन्हें नाम बदलना पड़ेगा। इसी नामसे नहीं भेज सकता।

तो जाओ, साफ कह दो। सवेरा होनेके पहले ही चले जायँ।

कुछ रुपया निकाल दो, दे दूं।

रुपये लेकर रामलाल बाहर आया। दरवाजा खुला था—गोवरधन नहीं था।

रामलालकी पत्नीने थोड़ी देर बाद झांका, पतिको अकेला देख वहां चली आयी, पूछा—गये?

रामलालने विह्वल भावसे कहा—पहले ही चले गये थे।

पत्नीने दरवाजेके पास पड़ी देसी पिस्तौल उठाकर कहा—यों ही चले गये? उनकी मर्जी।

सहसा उसकी निगाह किसी चीजपर पड़ी। उसने उसे उठाया। रामलाल भी पास आ गया।

पत्नीने कहा—यही छोड़ गये हैं। जब इतनी गिन्नियां यहां छोड़ गये हैं तो अपने लिए भी इतनी ही होंगी।

प्रातःकाल रामलालकी नींद टूटी। वह अपने गलेसे पत्नीका हाथ हटाकर उठना ही चाहता था कि बाहर किसीने किसीसे कहा—कुएंसे किसी अजनबीकी लाश निकली है।

रामलालके दिलकी धड़कन क्षणभरके लिए बन्द हो गयी और वह निश्चिन्त होकर फिर लेट गया।

——:०:——

मलिनाकी गद्दी

राममोहनके हाथमें एक झोला था, दरीका। जी, दरीका। राममोहन-की एक दरी, ठीक-ठीक कहें तो उसके पितामहकी दरी, जिसे कदाचित् किसी शिष्य या भक्तने उसके पण्डित पितामहके चरणोंके पास प्रणामीमें रख दिया था—जब टीक बीचसे फट चली, फट ही गयी, चारो ओर वह छिद्र धीरे-धीरे मुंह खोलने लगा, तब उसने बहुतोंकी दृष्टिमें व्यर्थ उस दरीका एक सदुपयोग निकाला। उसके चारों ओरके टुकड़ोंसे छोटे-बड़े चार झोले बनाये। उन्हींमेंसे सबसे बड़ा झोला उसके हाथमें था। झोला साम्यवादी था। लक्स साबुन और मिट्टीका ढ़ेला, रेंडीके तेल तथा 'जुल्फे बंगाल' की शीशी, आलू और पुदीना सभी कुछ उसमें स्थान पाता था। वह झोला राममोहनके बाजार करनेके काम आता था।

राममोहन झोला लिए 'सट्टी'—सागसब्जीके बाजारमें घूम रहा था। पूरबसे पश्चिम और उत्तर-दक्षिण, वह सट्टीके कोई १०० चक्कर लगाता था। यह रोजकी बात थी। इतने चक्कर लगाये विना वह निश्चित न कर सकता था कि किस दुकानपर अच्छे आलू हैं, कहां सबसे कच्चा कोंहड़ा हैं, कौन खटिक आज बढ़िया टमाटर लाया है, किसके पास ताजा कमरख है। वह हर चक्करमें चीजोंका भाव भी पूछता चलता था। वहांके खटिक भी उसे पहचानते थे। भाव पूछनेपर कोई-कोई कहता था—दस दुकान घूमकर तब आना।

बीच-बीचमें राममोहन यह भी देखता था कि रोज आनेवालोंमें कौन आया, कौन नहीं आया। नये खरीदारोंको वह सलाह भी देता था। बीच-बीचमें वह यह भी देख लेता था कि वह पतली-सी महाराष्ट्र युवती अब भी मुर्गीकी टांग पकड़कर, उसे जमीनसे उठाकर झोंका दे देकर, हाथसे ही

उसकी गुरुताका अंदाज कर रही है; उसे यही करते १५ मिनटसे कम नहीं हुआ।

राममोहन एक आलूकी दुकानपर रुका। हाथमें दो-चार आलू उठाकर भाव पूछा, पर दुकानदार दूसरे ग्राहकोंसे उलझा था; उसने सुना ही नहीं।

तभी राममोहनके बगलमें कोई खड़ा हुआ। उसने जरा घूमकर देखा—एक बंगालिन थी। ३० से ४० वर्षके भीतरकी। आगेके ३-४ दांत टूटे, शेषपर पानका काला दाग, आंखके नीचेकी हड्डियां उभरीं, ओठोंके दोनों किनारोंके बादके गालके हिस्से धंसे, माथेके बीचका हिस्सा कुछ उठा, अगल-बगलका दबा, शरीर गोरा, पर रक्तहीन, आंखोंमें चमक समाप्त-प्राय, विषादका पानी फैला, कुछ लज्जा कुछ बुद्धिमत्ताके भाव प्रकट, हाथोंकी उंगलियां शीर्ण, कलाईतक नीली-पतली नसें उभरीं, हाथका चमड़ा रूखा कुछ फटा, जैसा बरतन मांजनेवालियोंका होता है, धोतीमें जहांतहां पैवन्द लगे, जहां-तहां कुछ मसकी-सी, पर प्रायः साफ।

बंगालिनकी आंखोंमें परिचयका भाव खिंच आया, बोली—अच्छा है, राममोहन बाबू!

राममोहन चौंक पड़ा। उसकी स्मृति पूर्व-परिचितोंके चेहरोंपरसे होकर वेगसे आगे दौड़ने लगी, ठीक कहें तो परिचिताओंके चेहरोंपरसे होकर।

बंगालिनने सूखी हंसी हंसकर कहा—हम हैं, मलिना।

राममोहन और चौंक पड़ा। झोलेको उस हाथसे उस हाथमें करके, ओठोंपर जीभ फेरकर पूछा, अच्छी हो!

मलिनाके चेहरेपर अवसादका बादल झुककर निकल गया, बोली—हां, अच्छा हूं।

फिर घूंटसा निगलकर, नीचे देखकर पूछा—तुम्हारी शादी है?

राममोहनका सिर नहींके ढंगसे हिला। मलिना नीचे ही देख रही थी। तब राममोहनने कहा—नहीं। कितनी पुरानी बात है।

मलिनाने सिर उठाया, आंखोंमें अविश्वास और विश्वास दोनों, तब आंखें भर आयीं। उन्हें आंचलके छोरसे पोंछते हुए, उसांस लेकर उसने कहा—अच्छा, और चली गयी।

राममोहन वहीं खड़ा रहा। आनेजानेवालोंके धक्के उसे हिला-डुला देते थे, पर इसका उसे ज्ञान नहीं था। उसके सामने १० वर्ष पहलेकी घटनाएँ थीं।

तब वह १५ वर्षका था। तभी एक दिन एक बंगाली उसके एक मकानका कुछ अंश भाड़ेपर लेने आया था। राममोहन ७ वर्षकी अवस्थामें ही घरमें सबसे बड़ा हो गया था, पिताकी मृत्युके कारण और अन्य किसी पुरुषके न रहनेके कारण।

दूसरे दिन मलिना आई थी, यही मलिना जो अभी चली गयी है। तब उसका चेहरा और शरीर भरा था, हाथ कोमल थे, आंखोंमें चमक और उल्लास था, मुंहपर लाली भी थी और बिछलन भी, वाणीमें माधुर्य भी था, अभिभूत कर लेनेकी शक्ति भी।

मलिनाने कहा था—हमारा बाबू काल आपको पास आये था। हम पांच रुपीया नहीं देने सकता, तीनटा देने सकता है। बाबूका चाकरी हो जानेसे पांच रुपीया देगा।

राममोहन अभिभूत हो गया था। उसने ऐसी स्त्री देखी ही नहीं थी, स्त्रियोंसे बातचीतका मौका ही कब पड़ा था। उसने कुछ लजाकर कह दिया था—अच्छा।

उसी दिन मलिना और उसका बाबू उस मकानमें आ गया था। राममोहनकी एक पड़ोसिन भाभीने चुटकी ली थी—लुभा गये हो ना! और राममोहनने लुभानेका ठीक-ठीक अर्थ जाने बिना ही लाल होकर कहा था—हां, लुभा गया हूँ, फिर?

डेढ़ महीना बीतनेपर मलिना आई—आप भाड़ा लेने आया नहीं। काल जरूर ले जायगा।

राममोहन यह नहीं कह सका कि आई ही हो तो लेती क्यों नहीं आई। फिर वह लेने गया। एक कमरेमें आधा हाथ ऊँचा गद्दा बिछा था, उसपर झकाझक चांदनी और कई गाव-तकिये। राममोहनको बैठाकर मलिनाने एक तश्तरी उसके सामने रखी थी—उसमें थे, दो रसगुल्ले दो चमचम। राममोहनके न खानेपर मलिनाने एक चमचम उठाकर उसके मुंहमें घुसानेका उपक्रम किया था। तब उसने व्यस्त होकर खा लिया था। बादमें पान खाकर और तीन रुपये लेकर वह चला आया था। यही क्रम हर महीने तीन बरस चला था। दूसरे महीनेसे मलिनाको खानेके लिए जिद नहीं करनी पड़ी थी। रास्तेमें कभी मिल जानेपर मलिना मुस्कुरा देती थी, राममोहन कुछ लजाकर सिर नीचा करके चला जाता था।

तीन बरस पूरे होनेमें तीन महीने बाकी थे। तब जब राममोहन गया था तो तश्तरी तो उसके सामने आई थी पर पान खानेके बाद मलिनाने कुछ संकोचसे कहा था—इस महीना भाड़ा नही देने सकेगा।

यही क्रम दूसरे महीने भी चला और तीसरे भी। चौथा शुरु होनेपर मलिना एक दिन उसे बुलाने आई थी।

राममोहनको सामने बैठाकर उसने कहा था—बाबू काल नाराज होकर कहाँ भाग गया। हामारा पास कुछ नही है। हाम आज आपना मांको पास जायगा।

कुछ देर चुप रहकर जिस गद्देपर वे बैठे थे, उसे दिखाकर उसने कहा था—हाम एई गद्दि आपको पास रख जायगा। मांको पास जाकर रुपिया भेजेगा। आप भेज देगा।

राममोहन कुछ बोल नहीं सका था। उसी दिन, केवल उसी दिन मलिना-ने एकबार, सिर्फ एकबार, राममोहनका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा था—आप बहोत अच्छा आदमी है। हाम आपको सदा स्मरण रखेगा।

उसी दिन मलिना चली गयी थी। गद्दा उसने खुद ही बिछवा दिया था। दिन बीते, महीने हुए, बरसपर बरस आते गये। गद्दा एक किनारे

रखा रहा। पहले उसे देखकर सदा ही मलिनाका चेहरा राममोहनके सामने आता था, धीरे-धीरे वह धुंधला होने लगा।

मलिनाके जानेपर दो एक आदमियोंने उससे कहा था—गयी, अच्छा हुआ। पूरी पतिता थी। वह बाबू क्या उसका कोई था !

राममोहनने क्रोध और अविश्वासको पीकर पूछा था—इतने दिनों क्यों नहीं कहा ?

रसिक-भंगीके साथ उत्तर मिला था—तुम्हारा भी तो उसके साथ....

राममोहनने इसका खण्डन नहीं किया था पर उनकी बातपर विश्वास भी नहीं किया था। नहीं, गलत बात !

राममोहन सोच रहा था—इतने दिनों कहां थी वह ? क्या करती थी ? यह मलिना ही थी ? नहीं। लेकिन उसने तो खुद कहा ! क्या सचमुच...? नहीं, गलत बात।

इस समयका राममोहन उस समयकी मलिनाको और उसी समयके राममोहनको देख रहा था। इतना परिवर्तन कैसे ? हाथ कितने रूखे, चेहरा कैसा, शरीर क्या ; आखिर हुआ क्या, कैसे, क्यों ? उसने मुझे पहचाना कैसे ? हां, कहा था न—हाम आपको सदा स्मरन राखेगा।

तो उसने स्मरण रखा—मुझे भी, गद्देको भी। गद्दा क्यों मांगा ? शायद कुछ रहा नहीं है पास, उसीको बेचना चाहती होगी। बेचनेसे मिल भी जायंगे २५) एक रुपये। मैंने 'नहीं' क्यों कहा ? मैंने क्या एक दिन भी उसे काममें लिया ? फिर ? संस्कार ! क्या मैं बेईमान हूँ ! दूसरेकी चीज लेनेकी वासना मनमें रहती है ? उसीने 'नहीं' कराया ! छि ! ! तो ?

पहलेकी तरह उसने क्यों नहीं कहा—गद्दा दे दो। और मांगनेपर पहले जैसा अभिभूत मैं होता ? पर उसने क्यों नहीं कहा ! वह अपना कष्ट खोलकर क्यों नहीं कह सकी ? कष्टमें तो वह थी ही। शायद उसका अन्तिम अवलम्ब मैं था, मैं नहीं गद्दा। क्या करेगी अब ?

राममोहन घबरा गया, अपनेपर क्रुद्ध भी हो गया, आशंकासे भी उसका हृदय पूर्ण हो उठा, कुछ ममता भी—

सहसा वह तेजीसे आगे बढ़ा, इधर-उधर देखता। सड़कपर बहुत दूर उसे मलिना जाती देख पड़ी। वह दौड़ा, खूब जोरसे। मलिनाका हाथ पीछेसे ही पकड़कर हांफता हुआ बोला—तुम्हारा गद्दा रखा है मलिना, ले जाओ।

मलिनाने घूमकर राममोहनके मुंहपर एक तमाचा जड़ दिया, कहा—बदमाश!

राममोहनने अवाक् होकर सोचा यह कैसा व्यवहार।

पर दूसरे ही क्षण उसका वह भाव जाता रहा, उसका दिल कुछ हलका हुआ, उसने देखा कि वह कोई अपरिचिता है, मलिना नहीं और हाथ छूटते ही वह फिर बेतहाशा सामनेकी ओर भाग चला।

———:०:———

शुनःपुच्छ

बात बहुत पुरानी है। उस कालको हम ऋषि-युग कह सकते हैं।

एक विशाल अरण्य था। उसमें दस हजारसे कुछ अधिक व्यक्ति रहते थे। वे वहीं निवास करनेवाले एक महर्षिके चरणोंमें बैठकर विविध शास्त्रोंका अध्ययन करते थे।

अरण्यसे दो कोस दूर एक ग्राम था। जब महर्षि वहां रहने लगे और प्रतिदिन सैकड़ों नये शिष्य आने लगे तो उस प्रान्तके प्रान्ताध्यक्षने अपने राजाकी आज्ञासे वह ग्राम बसाया। उसके निवासी नगर-जीवनसे ऊबे समृद्ध व्यक्ति थे। गुरुकुलका समस्त व्यय इन लोगोंने उठा लिया था।

इस ग्रामसे दो कोस दूर, दक्षिण दिशामें पक्कण (शूद्र,चांडाल आदि-का वासस्थान, चमरौटी) था।

पक्कणसे कोसभर और दक्षिण शुनःपुच्छका निवास-स्थान था। वह चांडाल था।

रसाल मंजरित हो चुके थे; लताओं और वल्लियोंके कलेवर बदल चुके थे; उनका कायाकल्प हो चुका था; सुगंधित समीर बीच-बीचमें नवीन किशलयोंको कुछ कह जाता था और वे थिरक उठते थे, वृक्षोंके नीचे चन्द्रिका और अन्धकारकी आंखमिचौनी चल रही थी, मधूककी गन्ध बीच-बीचमें आ रही थी। सरोवरमें कुमुदिनी खिली थी और भौरोंका तटसे उसतक यातायात चल रहा था। सोमकी किरणें शुभ्र हो चलीं थीं।

शुनःपुच्छ अपने निवासस्थानके एक प्रकोष्ठ (कमरा) में बैठा था। उसके सामने कुछ रिक्त चषक (मद्य पीनेका पात्र) था, एक कुतुपी (कुप्पी) में मैरेय (ईखकी शराब) था, एक मृत्पात्र में अवदंश (चखनी) था।

प्रकोष्ठकी दीवारपर, धनुष बाण, परिघ, तोमर, प्रास आदि टंगे थे। एक कोनेमें व्याघ्रचर्म और मृगचर्म गंजे थे। उनपर सैकड़ों हाथी दांत पड़े थे। नीचे शूकर-दंत, शूकरकी चर्बी, व्याघ्रकी चर्बी, साहीके कांटे आदि पड़े थे। एक कोनेमें कपोत, हारीत, मृग और वाराहके शव पड़े थे। कहींसे मृगनाभिकी तीव्र गंध आ रही थी। एक ओर हसंती (अंगीठी) थी, उसमें तुरुष्क (लोहबान) जल रहा था।

शुनःपुच्छने चषक उठाया। तभी उसकी पत्नी भीतर आयी। उसके पीछे ऊँचे दो श्वान भी।

वह चंडातक (घुटनोंसे कुछ नीचे तकका लहंगा) पहने थी। वह रक्तवर्ण था। वह कूर्पासक (आधी चोली) पहने थी, वह पीत था। वह स्वयं श्यामा थी—वर्णसे भी, आयुसे भी। उसकी कलाइयोंमें हाथी-दांतकी चूड़ियां थीं। उसका ललामक (माथेपर लटका पुष्पगुच्छ) श्वेत पुष्पोंका था, कर्णिका (कर्णभूषण) पीत पुष्पकी थी। उसकी ग्रीवामें कमलोंका देवच्छन्द (१०० लड़ोंका हार) था—उसमें कह्लार (सफेद कमल), हल्लक (लाल कमल) और इंदीवर (नील कमल) की लड़ियां थीं। उसके गालोंपर श्वेत चन्दनका स्थासक (ठप्पा) था, माथेपर केसरकी पत्रलेखा (विशेष प्रकारका तिलक), जिसपर चूर्ण कुन्तल (जुल्फ) झुक आया था। उसके पैरोंमें [illegible] ([illegible]) की छोटी कलियोंका हंसक (पैरका गहना) था। उसके नेत्र [illegible] फैले हुए थे, शरीर [illegible], [illegible] और सुडौल था।

शुनःपुच्छने [illegible] एक [illegible] (घूंट) लिया और पूछा—[illegible] ([illegible]) है न?

[illegible] 'ना' [illegible] किया।

शुनःपुच्छने चषक रिक्त कर दिया, अवदंश मुंहमें डाला, चषकको फिर भरते हुए कहा—जम नहीं रही है।

पत्नीने पास बैठकर कहा—प्रति दिन तो मात्रा बढ़ रही है!

शुनःपुच्छने चषक उसके मुखकी ओर बढ़ाया। उसने आधी घूंट लेकर कहा—बहुत तीक्ष्ण है। थोड़ा जल।

पतिने उठती हुई पत्नीको बैठा लिया। एक कुत्ता पास आकर बैठ गया। उसने उसपर जरा उठंगकर पूछा—क्या सोच रहे हो?

शुनःपुच्छने जरा-सा अवदंश दोनों कुत्तोंके सामने फेंकते हुए कहा—कुछ तो नहीं!

कुछ देर बाद पत्नी उठकर बाहर चली गयी। बाहरसे कुछ देर झांकती रही। शुनःपुच्छ पृथ्वीकी ओर देख रहा था। वह फिर आकर बैठ गयी।

शुनःपुच्छने अपने शरीरकी ओर देखते हुए कहा—देखो, मेरा वर्ण कृष्ण है? नहीं, गौर ही है। नेत्र स्वाभाविक रक्त हैं? पर इन ऋषियोंने पुस्तकोंमें यही प्रचलित कर दिया है। आगेवाली पीढ़ियां इसे सत्य समझेंगी। यदि किसीने गौर चांडालका वर्णन कर दिया तो लोग सोचेंगे कि उसकी मातापर किसी ऋषिने अनुग्रह किया था।

पत्नीने कहा—तुम्हारी इन्हीं बातोंके कारण मैं तुम्हें पक्वणसे भी इतनी दूर ले आयी हूं।

शुनःपुच्छ कहता चला—हम भ्रष्ट हैं क्योंकि हममें पुनर्विवाह होता है, हम नीच हैं क्योंकि हम अपनेसे उच्च बने बैठोंकी सेवा करनेको बाध्य हैं। और ये ऋषि पवित्र हैं! किसीने जहां आकर गुरुसे कहा—मैं कानीन (कन्याका पुत्र) हूँ, मैं पारस्त्रैणेय (पर-स्त्रीसे उत्पन्न) हूँ, मैं कौलटेर (कुलटाका पुत्र) हूँ, मैं गोलक (पतिके मरनेपर जारसे उत्पन्न) हूँ, मैं कुण्ड (पतिके रहते जारसे उत्पन्न) हूँ—बस ऋषिजी आसन छोड़कर उठ दौड़ेंगे उसे बांहोंमें भरकर कहेंगे—तू ब्राह्मण है, तू ही यथार्थ ब्राह्मण है, क्योंकि तू सत्यवादी है। तू—

पत्नीने पतिके मुंहपर हाथ रख दिया! अनुनयसे कहा—चुप भी रहो! तुम्हें हो क्या गया?

शुनःपुच्छने हाथ झटक दिया। कहने लगा—हम ग्राममें नहीं रह सकते। हम अपवित्र हैं, हम केवल दक्षिण दिशामें रह सकते हैं। हम उनके निवास स्थानसे इतनी दूर रहें कि उनके शब्द हमारे कानोंमें न पड़ें। हमारे कानोंमें पड़नेसे वेद और शास्त्र अपवित्र हो जायंगे। हम उनकी पगडण्डी पर न चलें, हमारी छाया भी उनपर न पड़े। लेकिन उनके कई एक यज्ञोंमें चाण्डाल दम्पतिको जाना ही होगा और वहां सबके बीचमें........छिः छिः! !

पत्नीने शुनःपुच्छके सबल कण्ठमें हाथ डालकर, उसके विशाल आर्द्र वक्षःस्थलके सहारे बैठकर, मद-विघूर्णित लोचनोंको ऊपर उठाकर कहा—उनकी बातें न करो, वे शक्तिशाली हैं।

शुनःपुच्छने अधीर होकर कहा—हां, वे शक्तिशाली हैं क्योंकि किसीकी भी कन्या या वधू उनकी पहुंचके बाहर नहीं, चाहे वह चाण्डाल ही हो; किसीका मस्तक उनका भार सहन नहीं कर सकता; कोई भी सिंहासन उनके लिए छोटा ही है। यह शक्ति नहीं तो क्या है?

पत्नीने कहा—उनका त्याग भी तो कम नहीं। कौपीन ही तो पहनते हैं, प्रायः उपवास ही तो करते हैं, दिन रात जप ही तो करते हैं, अध्ययन ही में तो लीन रहते हैं।

शुनःपुच्छने कहा—यह त्याग नहीं, जप नहीं, [illegible] है—[illegible] बुद्धि और [illegible]। ये सब! [illegible] शक्ति इनके [illegible] है। [illegible] है और [illegible] हैं। [illegible]!

शुनःपुच्छके मुखसे [illegible] पत्नीने कहा—[illegible]

शुनःपुच्छने [illegible] पूछा—यह कौन है?

पत्नी [illegible] बैठ गयी।

शुनः[illegible] कहा—यह कौन है [illegible]?

—पत्नी। क्यों? अब मत पियो।

शुन:पुच्छने अट्टहास्य करते हुए कहा—तू मेरी पत्नी? पूछ इन ऋषि-योंसे! हम तो संस्कारहीन हैं न! हम जिनसे विवाह करें, वे ऋषियोंकी पुस्तकोंमें पत्नी नहीं हो सकतीं। वे उपचारके लिए पत्नी कही जाती हैं।

—तब मैं क्या हूँ तुम्हारी?

शुन:पुच्छने उसे बांहोंमें भरकर कहा—तू मेरी प्राण है—बहिश्चर प्राण। पर, इन ऋषि-पुत्रोंसे तो पूछ!

पत्नी उठ खड़ी हुई। वह अंतर्द्वार (खिड़की) पर गयी, बाहर देखकर कहा—अर्धरात्रि हुई।

उसने कुतुपी और चषक एक ओर रख दिया। हसंती बाहर रख दी कुत्तोंको बाहर निकाल कर द्वार बन्दकर लिया, २-३ व्याघ्रचर्म बिछाये।

शुन:पुच्छ और उसकी पत्नी एक दूसरेकी बांहके उपधानपर सिर रखकर लेटे, बातें होने लगीं।

शुन:पुच्छने रशनाको हिलाते हुए कहा—आज तो तुम.......

पर जाने दीजिये। उन बातोंको न लिखना ही अच्छा। साहित्य-शास्त्र-में शूद्रोंकी इन चेष्टाओंके वर्णनको रसाभास माना गया है।

× × × ×

शुन:पुच्छके सामने मध्वासव (महुएकी शराब) रखा था, वह आम-की मंजरियोंसे बसाया हुआ था।

शुन:पुच्छने पूछा—मैं ऋषि हो सकता हूँ?

पत्नीने हँसकर कहा—हां।

—कैसे?

किसी रंगावतारी (अभिनेता) से ऋषियोंके वस्त्र, कमण्डलु, कूर्च (दाढ़ी-मूंछ) मांग लाओ, बस।

—वेद और शास्त्र?

—मौनव्रत धारण करनेसे यह दोष भी छिप जायगा।

शुनःपुच्छने पत्नीकी पीठपर हाथ रखकर कहा—तुम्हें तो धर्मशास्त्री होना चाहिये था।

पत्नीने कहा—लाओ न एक दिन। मैं भी तुम्हारा वह वेश देख लूं।

शुनःपुच्छने कहा—ऋषि पत्नियोंकी भूषा भी लाऊँगा।

पत्नीने कहा—मैं नहीं पहनूंगी।

—क्यों ?

मेरे ये वस्त्र बुरे हैं? यक्षकर्दम (एक सुगन्धि लेप, एक तरहका उबटन) छोड़कर भस्म पोतूं, केशोंमें भस्म भर लूं? ना,

शुनःपुच्छने कहा—मैं तो लाऊँगा। लेकिन रंगावतारीसे उन्हें ठीकसे पहनना भी सीखूंगा, कोई त्रुटि न रह जाय।

—इससे लाभ ?

शुनःपुच्छकी आंखें चमक उठीं।

—अग्नि भागमें यहांसे कोई २० योजनपर महायज्ञ होनेवाला है, उसे देखने जाऊँगा।

पत्नीका मुख वर्णहीन हो गया, उसकी शरीर-लतिका कम्पित होने लगी, नेत्रोंमें जल भर आया; एकाएक पतिको बाहुपाशमें भरकर कहा—नाथ क्यों, नहीं जाओगे।

शुनःपुच्छने उसके [illegible] पड़े [illegible] हाथ फेरते हुए कहा—जाना मत क्यों? इसमें भी—

—नहीं, नहीं; यह तो मृत्युको आमन्त्रित करना है।

शुनःपुच्छ मौन हो गया। पत्नी सिसकते-सिसकते बाहुपाशमें ही निद्रित हो गयी।

× × × ×

[illegible] हुआ था। [illegible] और [illegible]
[illegible]

उक्त पल्लवोंसे आच्छादित थे। भव्य कुण्ड और वेदिका नेत्रोंको आकृष्ट करती थी। मण्डपके बाहर दूरतकका स्थान आच्छादित था।

लाखों मनुष्योंका समूह था। कुलपतियोंके पृथक्-पृथक् स्थान बने थे। सर्वत्र ऋषि, मुनि, ब्रह्मचारी देख पड़ते थे। कोई जप करता था, कोई स्वाध्याय; कोई शास्त्रार्थ करता था, कोई अपने सन्देहोंका निवारण। विशिष्ट आचार्योंकी पर्णशालाएँ कभी रिक्त न होती थीं, लोग अपने सन्देह और प्रश्न करते थे; उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो चले जाते थे।

दर्शक भी लाखों थे। उनके निवासस्थान पृथक् थे। शकट, अश्व, वृप भी लाखों ही थे।

मेला भी लग गया था। जावाल (बकरी बेचनेवाला), देवाजीवी (देव-विग्रह दिखाकर जीविका करनेवाला), ऐन्द्रजालिक, जायाजीव (नट), मौरजिक (मृदंग-विशारद), वैणविक (वेणु बजानेवाला), वैणिक (वीणा बजानेवाला), शाकुनिक (चिड़ीमार), कुविंद (वस्त्र बुननेवाला), मालिक (माला बनानेवाला) आदि अपनी कलाएँ दिखा रहे थे और अपनी वस्तुएँ बेच रहे थे। भौरिक (कनकाध्यक्ष), नैष्किक (रूप्याध्यक्ष), और स्थायुक (ग्रामाधिकृत) निरन्तर घूम रहे थे।

यज्ञारम्भ हुआ। यज्ञमण्डपके चारो ओर सशिष्य कुलपति, ऋषि मुनि और दर्शक आसीन हुए। बीचमें मार्ग छोड़ दिया गया। मण्डपके भीतर अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता, अग्नीत्, प्रति-प्रस्थाता और मैत्रावरुणका वरण हुआ। एक यूपमें एक हृष्टपुष्ट मेष बंधा था, उसके सामने आधे-भीगे यव थे। स्रुव-ध्रुवा-उपभृत-जुहू आदि यज्ञपात्रोंका प्रोक्षण (मन्त्रपूर्वक जल छिड़ककर पवित्र करना) हुआ। वेदिका कुशसे आस्तीर्ण हुई। अध्वर्यु आदि अपने स्थानोंपर आये। अध्वर्युने मध्य कुण्डमें अग्नि-स्थापना की, मन्त्रोच्चारण होने लगा। सर्वत्र शान्ति छा गयी।

अध्वर्युने स्रुव उठाया, आज्यस्थाली (घीका कटोरा) में डुबाकर उसे भरा और हवन आरम्भ हुआ।

दो-तीन आहुतियोंके बाद ब्रह्माने कहा—अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं हुए।

अध्वर्युने धवित्र (मृगचर्मका पंखा) से अग्नि प्रज्ज्वलित करना प्रारम्भ किया।

ब्रह्माने कुछ क्षणों ध्यान किया, फिर पूछा—मैं पवित्र हूं, आप लोग देखिये। अग्नि प्रज्ज्वलित क्यों नहीं होते?

अध्वर्यु आदिने भी कुछ देर विचार किया, कहा—हम भी पवित्र हैं।

ब्रह्माने कहा—सर्वद्रष्टा (निरीक्षक) से निवेदन करो।

अग्नीत् उठकर मण्डपके बाहर चला। चारो ओर कानाफूसी होने लगी। मधुमक्षिका-रव-सा व्याप्त हो गया।

अग्नीत् प्राग्वंश (मण्डपकी पूर्व दिशामें स्थित कुटी) में गया। वहां एक अति वृद्ध ऋषि बैठे थे। इनकी भौंहेंतक श्वेत थीं। सुनकर उन्होंने कहा—दर्शकोंमें अन्वेषण करो।

कुलपतियोंने अपने शिष्योंसे पूछना प्रारम्भ किया, शेष लोग भी अपनी-अपनी जांच करने लगे। अन्तमें सभीने अपनी पवित्रताकी घोषणा की।

अग्नीत् फिर प्राग्वंशमें गया। सर्वद्रष्टा कुछ क्षण मौन रहे, फिर उठकर मण्डपकी ओर चले। उन्हें देखकर सब लोगोंने अभ्युत्थान दिया।

वे मण्डप-द्वारपर रुके। सबको बैठनेका संकेत किया। सबके बैठनेपर उन्होंने मण्डपके भीतर देखा—अध्वर्यु आदिने क्रमतः उठकर पवित्रता घुष्ट की। तब सर्वद्रष्टाने दर्शकोंकी ओर मुख किया। सामनेके एक ब्रह्मचारीसे पूछा—वत्स! पवित्र हो?

ब्रह्मचारीने उठकर प्रणाम किया, कहा—आंगिरस गोत्रका आजमीढ़ आपको प्रणाम करता है। भगवन्! मैं पवित्र हूं।

प्रश्न और उत्तरका क्रम चलने लगा। घण्टों बीत गये।

सर्वद्रष्टाने कई पंक्तिके बाद बैठे एक व्यक्ति से प्रश्न किया—वत्स तुम?

वह व्यक्ति उठकर खड़ा हुआ, प्रणाम किया, पर मौन रहा। उसके

हाथमें आषाढ़ (पलाशदण्ड) था, पासमें कमण्डलु और वृषी (एक आसन) रखी थी, अधपके कूर्च थे।

सर्वद्रष्टाने प्रश्न दुहराया। वह व्यक्ति मौन ही रहा।

'वत्स! तुम एड (बधिर) हो?'

वह व्यक्ति निश्चल।

'वत्स! एडमूक (बहरा और गूंगा) हो?'

'वत्स! किसके शिष्य हो!'

'वत्स! किसके सब्रह्मचारी, किस गुरुकुलके हो?

'वत्स! वाचंयम हो?'

उस व्यक्तिने सिर हिलाकर—हां कहा।

'तो वत्स! मैं आज्ञा देता हूँ। व्रत-भंग करो, तुम्हें दोष न होगा।

वह फिर भी मौन रहा।

'वत्स! ऐसे अवसरपर व्रत-भंग करनेसे पाप नहीं होता। बोलो वत्स!'

सर्वद्रष्टा पूछते-कहते थक गये। उन्होंने चारो ओर देखा।

क्रुद्ध कुलपतियों और अन्य व्यक्तियोंने कहा—इसके विषयमें हम कुछ नहीं जानते। यह अदृष्टचर व्यक्ति है।

सर्वद्रष्टा मण्डपकी ओर लौटे। द्वारपर मृगचर्मपर बैठकर उन्होंने नेत्र बन्द किये, उनका शरीर एक बार हिला और तब वे पाषाण हो गये। कुछ देर बाद उनका शरीर फिर कांपा और उन्होंने 'ओम्' कहकर आंखें खोलीं। वे उठ खड़े हुए, उन्होंने उस व्यक्तिकी ओर देखते हुए कहा—चाण्डालोयं शुनःपुच्छः। (यह शुनःपुच्छ नामक चाण्डाल है।)

चारो ओर हुंकार होने लगा। लोग उठकर खड़े हो गये। ऋषि शिथिल जटाजूट कसने लगे। चारो ओर दण्ड, कमण्डलु और मृगछाला हिलाई जाने लगीं। शुनःपुच्छके अगल-बगलके ऋषि आदि विद्युत्-हतकी तरह उससे दूर सरक गये। आवाजें आने लगीं—अब्रह्मण्य! हन्तव्य! दण्डनीय! तुषानल! अहो! धिक्! हा यज्ञ! हा यज्ञ-पुरुष! हा हन्त!

सर्वद्रष्टाने हाथ उठाया, सर्वत्र शान्ति हो गयी, सब लोग बैठ गये। केवल शुन:पुच्छ खड़ा रहा। वह प्रतिमा जैसा खड़ा था, उसकी आंखें भूमिमें जड़ी-सी थीं।

अध्वर्यु आदि बाहर निकल आये। सर्वद्रष्टासे परामर्श होने लगा। कुछ देर बाद सर्वद्रष्टाने कहा—शुन:पुच्छने मन्त्र सुनने और यज्ञ देखनेके लोभसे यह काम किया। उसके कर्णकुहरोंमें तप्त सीसक ढाला जायगा।

तुमुल हर्षध्वनि हुई। होता बाहर निकला। वह एक लौह-पात्र और सीसा लेकर आया। कुण्डमें सीसा गलने लगा।

सर्वद्रष्टाने शुन:पुच्छको आगे आनेका संकेत किया। वह मंत्रचालित-सा आगे बढ़ा। वह सर्वद्रष्टाके पैरोंके पास धप् से बैठ गया।

प्रतिप्रस्थाता संदंश (सड़सी) से लौह पात्र पकड़कर आगे बढ़ा।

दर्शकोंके समुदायमें स्त्रियोंकी चीख सुन पड़ी। हजारों स्त्रियां बाहर मैदानकी ओर भाग चलीं। कुछने बैठे ही बैठे वस्त्रोंमें और हाथोंमें मुंह छिपा लिया। कुछ दर्शकोंने कानोंमें उंगलियां डाल लीं।

शुन:पुच्छ अभिभूत-सा बैठा था। उसके ध्यानमें पत्नी आयी, उसके ये शब्द आये—शपथ करो, नही जाओगे; नहीं, यह तो मृत्युको आमन्त्रित करना है।

सर्वद्रष्टाने कहा—कान ऊपर करो।

शुन:पुच्छने बायें कंधेपर अपना बायां कान रख दिया। मन्त्रोच्चारण होने लगा। शुन:पुच्छको समुद्र-गर्जन-सा गूंज पड़ने लगा, उसका शरीर शिथिल होने लगा, उसका मन निद्रित होने लगा, उसे मन्त्रोंका अर्थ-सा स्फुरित होने लगा। उसके ओष्ठ एक दूसरेपर दृढ़ हो गये थे; वे कुछ फैले, उसकी आंखें बन्द हो गयीं।

और दूसरे ही क्षण प्रतिप्रस्थाता उसके दाहिने कानमें तरल और वेधक अग्नि छोड़ रहा था।

—:o:—

पण्डितकी पत्नी

नदीके कच्चे घाटपर एक महिला स्नान कर रही थी। वह एक मोटी सफेद धोती पहने थी, कलाइयोंमें नारा बँधा हुआ था। उसकी उम्र ५५ से ऊपर थी। उसका शरीर अस्थिप्राय था, पर चेहरेपर तेज और सन्तोष था।

स्नानके बाद, जलमें ही खड़े रहकर उसने सूर्यको अर्घ्य दिया और तब जपमें प्रवृत्त हुई।

उसी समय २०-२५ युवती दासियोंके साथ एक स्त्री वहां स्नान करने आई।

पहले दो-तीन दासियां जलमें उतरीं। एकने जपपरा महिलासे कहा—उधर हट जाओ, वर्धमानकी रानी साहब स्नान करेंगी।

जप करनेवालीकी आंखें सतेज हो गयी, पर वह ४–५ हाथ एक ओर हट गयी। और दासियां जलमें उतरीं। एकने कहा—माई री! कितना गंदा पानी है! कपड़े तो नष्ट हो जायँगे!

रानी भी पानीमें उतरीं। दासियां जलक्रीड़ा करने लगीं। एक दूसरेपर हाथोंकी पिचकारियां चलने लगीं, दोनों हाथोंकी उँगलियां एक दूसरेमें फँसाकर हथेलियोंसे जल ऊपर उछाला जाने लगा, तैरनेमें हाथों पैरोंके आघातसे पानी चारो ओर उड़ने लगा, एक दूसरेके मुंह और आंखोंमें पानीके छींटे दिये जाने लगे।

जप करनेवालीपर पानीकी जैसे बौछार होने लगी। उसका जप बन्द हो गया। उसने आचमन किया और कहा—यह कैसी शिष्टता है! क्या कोई जप न करने पावेगा?

एक दासीने औद्धत्यसे कहा—उधर हट जाओ न!

उस महिलाने कहा—मैं तो समझती थी कि रानियोंकी दासियां अधिक शिष्ट होती होंगी।

दो-तीन दासियोंने एक साथ कहा—रानी साहबको बीचमें मत लाओ।

रानीका चेहरा तमतमा उठा था। उन्होंने कहा—जुड़ता तो एक 'नोया' (लोहेकी चूड़ी, सौभाग्यका चिह्न) नहीं, दिमाग इतना !

उस महिलाकी आंखें गर्वसे दीप्त हो गयीं, कलाईके मंगल-सूत्रको छूते हुए उन्होंने उत्तर दिया—तुम्हारे हाथोंमें जिस दिन ये सोनेकी चूड़ियां न रहेंगी, उस दिन तुम अकेली विधवा होओगी; मेरे हाथोंमें जिस दिन यह मंगल-सूत्र न रहेगा उस दिन वंगभूमि विधवा हो जायगी।

रानीके मुख-कमलपर तुषारपात हो गया। वे एकदम मुर्झा गयीं।

उस महिलाने तटपर रखा मिट्टीका कलश भरा और गीली ही धोतीसे चली गयी।

:o: :o: :o: :o: :o:

विश्वनाथ न्यायसार्वभौम अपनी झोपड़ीमें शिष्योंको पढ़ा रहे थे। उसी समय वर्धमानके राजा और रानीने वहां प्रवेश किया। राजाने भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। रानीने गलेमें आंचल डालकर प्रणाम किया। दोनों बीच-बीचमें फटी, पुरानी चटाईपर बैठ गये।

पाठ बन्द हो गया। सार्वभौम महाशयने जिज्ञासा-दृष्टिसे उनकी ओर देखा। पीछेसे एक सेवकने कहा—वर्धमानके राजा और रानी हैं।

सार्वभौम महाशयने कहा—अच्छा ! अच्छा ! तो कोई सन्देह है ?

राजाने लज्जित होकर कहा—मैंने तो न्यायशास्त्र नहीं पढ़ा है।

विश्वनाथजीने कहा—तुम्हारे पिता एक बार आये थे, वे तो प्रविष्ट थे। उन्होंने कई बातें पूछी थीं। तो कैसे आये ?

राजाने रानीकी ओर संकेत कर कहा—इसका अपराध क्षमा कराने आया हूं।

सार्वभौम महाशयने विस्मित होकर कहा—कैसा अपराध ?

राजाने उनके मुंहकी ओर देखा, फिर कहा—तो आपको नहीं मालूम। इसने मांसे अविनय किया था।

सार्वभौम महाशयने पुकारा—अजी! सुनती हो?

भीतरसे आवाज आई—कुछ काम है क्या? अच्छा आई।

उनकी पत्नी भीतरसे आकर खड़ी हो गयीं। राजा रानीने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

सार्वभौम महाशयने कहा—रानीसे कुछ झगड़ा किया था तुमने?

रानीने व्यस्त होकर कहा—नहीं, नहीं, मेरी ही धृष्टता थी।

सार्वभौम महाशयकी पत्नीने लज्जित होकर कहा—मेरे मुंहसे कुछ कटु बातें निकल गयीं थीं।

राजाने कहा—नहीं मां! तुमने सत्य ही कहा था, मेरे जैसोंके मरने....

सार्वभौमकी पत्नीने अत्यन्त लज्जित और ग्लानियुक्त होकर कहा—बस, बस, अमंगलकी बात क्यों कहते हो।

रानीने उठकर उनके चरण पकड़ लिये—मां, क्षमा कर दो।

पण्डित-पत्नीने उसे उठाकर कहा—मैं तो उसे भूल भी चुकी थी। वह तो उसी क्षणकी बात थी। मैं आशीर्वाद देती हूँ, तुम अखण्ड सौभाग्यवती होओ, पुत्र-पौत्रवती होओ।

रानीने फिर उनके पैरोंपर माथा रख दिया।

राजाने सेवकसे लेकर अनेक बहुमल्य धोतियां और साड़ियां पण्डित-जीके सामने रखीं।

पण्डितजीने उन्हें छूकर, प्रसन्न होकर कहा—वाह! बहुत ही चिक्कण और सूक्ष्म हैं।

राजाने प्रार्थना की—इन्हें ग्रहण किया जाय।

पण्डितजीने कहा—यहां इन्हें कौन पहनेगा? ये तो बड़े आदमियोंके लिए हैं। ये तो हमारे कामकी नहीं!

पण्डित-पत्नीने एक शिष्यकी ओर देखकर कहा—यह यदु जरा शौकीन है। अपनी धतियां रोज बड़े यत्नसे धोता है।

यदु बाहर भाग गया।

राजाने कहा—कुछ सेवा तो स्वीकार हो।

पण्डितजीने कहा—देवोत्तर खेत हैं, उनमें वर्ष भरका धान हो जाता है, उन्हें बोना, काटना, कूटना, सब कुछ मेरे शिष्य कर लेते हैं। झोपड़ीपर कोंहड़े-कद्दूकी बेल हैं, उनकी तरकारी हो जाती है। नमककी कभी-कभी कमी हो जाती है। तुम थोड़ा नमक भेज देना।

राजाने बहुतसे रुपये पण्डितजीके सामने रखे। पण्डितजीने कहा—इनका क्या होगा? हमें तो कुछ भी खरीदना नहीं पड़ता। इन्हें ले जाओ।

राजा और रानीने पुनः प्रणाम किया और कुटीसे बाहर निकल आये।

शवसाधन

इस महाश्मशानकी ही घटना है जिसका दूसरा नाम काशी है।

रात आधीसे ऊपर थी। घोर अन्धकार था। गंगाके उस पार, रामनगर किलेसे कोई दो कोस उत्तर, जलसे २५-३० हाथ ऊपर, बालूपर एक शव पड़ा हुआ था। उसका मुंह आकाशकी ओर था। शव फूला हुआ था और गल चला था। आंखें मछलियोंने साफ कर दी थीं और शरीर भी जहां-तहां खा लिया था। तीव्र दुर्गन्ध भी निकल रही थी। उसके संपूर्ण पेट और हृदयके कुछ अंशपर पलथी मारे एक दिगम्बर मनुष्य बैठा था। उसके बोझसे पेट दब गया था। बैठनेके समय शवके मुंह, आंखोंके छिद्रों, नाक और कानसे पानी निकलकर चारो ओर बह गया था। उसपर बैठे दिगम्बर मनुष्यके बीच-बीचमें इधर-उधर हिलनेसे, अब भी कुछ पानी निकल आता था।

चारो ओर सन्नाटा था। बीच-बीचमें कोई पक्षी आकाशमें सर्रसे इधरसे उधर चला जाता था। कभी कोई बड़ी मछली पानीमेंसे ऊपर आकर डुबकी लगाती थी तो थोड़ा पानी इधर-उधर उछल जाता था। शवसे कुछ दूर दो-एक शृगाल आकर खड़े हो गये थे। वे कभी कभी शवके चारो ओर चक्कर काटते थे। दूरपर कहीं कोई शृगाल बीच-बीचमें बोल उठता था और कुछ अन्य उसके चुप होते ही बोल उठते थे। गंगाके उस पार बीच-बीचमें कुत्तोंके भूंकनेकी आवाज सुन पड़ती थी।

दिगम्बरने जप बन्द किया और टटोलकर बगलमेंसे लाल फूलोंकी एक माला उठाकर शवके गलेमें पहनायी, चन्दनका टीका लगाया, छोटी-सी इत्रकी शीशी माथेपर उलट दी, अबीर-बुक्का सिरपर छिड़का और कुछ बुदबुदाते हुए शवके मुंहमें शराबकी बोतल लगाकर टेढ़ी कर दी। कुछ शराब

मुंहमें गयी, शेष दोनों ओरसे बहने लगी। अन्दाजसे आधी शराब इस तरह समाप्त कर उसने बोतल अपने मुंहसे लगा ली और घट-घट करके पीकर, खाली बोतल दूर फेंक दी। तब मालामेंके दो-चार फूल तोड़कर अपने कानोंपर रखे और झुककर बायें हाथसे शवके केश पकड़े। शृगाल उसके हिलने-डुलनेसे जरा पीछे हटकर खड़े हो गये थे। अब दिगम्बर कुछ स्पष्ट रूपसे कहने लगा—ओं महावेतालाय ह्रूं रं शं हं जं हल् हल् फट्, एह्येहि महावेताल, आविश, आविश, अमृतं कुरु, कुरु, सिद्धिं देहि, देहि, प्रसीदय प्रसीदय।

सहसा पास हीसे, शवके सिरके बिलकुल पाससे ही, बालूपर जोर-जोरसे पैर पटकता हुआ कोई तेजीसे दौड़ गया। दिगम्बरके एक साथ रोएँ खड़े हो गये, पर वह कहता चला—ओं महावेतालाय...........

शृगाल बहुत दूर भाग गये और अमंगलकारी रव करने लगे। तभी कोई १००–१५० हाथ दूर एकाएक तेज लाल प्रकाश हुआ। एक लपट-सी पृथ्वीके भीतरसे निकलकर आकाशमें समा गयी। दिगम्बरको लगा, जैसे उस प्रकाशके पीछे बहुत लम्बा-चौड़ा कोई पुरुष खड़ा हो। शृगाल एकदम भाग गये।

दिगम्बरकी मुट्ठी केशोंपर दृढ़ हो गयी, वह दांतपर दांत रखकर कहने लगा—ओं महावेतालाय.............

आधा घण्टा बीत गया। शृगाल फिर आ गये थे। दिगम्बरने इधर-उधर देखा और शवपरसे उठ पड़ा। वह सीधा गंगाकी ओर चला। १०–१५ हाथ चलनेपर उसे पीछे जानवरोंके लड़ने और दौड़नेकी आहट मिलने लगी। शृगाल शवपर टूट पड़े थे, वे आपसमें लड़ रहे थे।

दिगम्बर पानीमें घुसकर आगे बढ़ा। कमर भर पानीमें आकर उसने कई गोते लगाये, कुछ देर जप किया और तब दूसरे पारकी ओर तैर चला।

:o: :o: :o: :o: :o:

अस्सी घाटके बाद जहांसे गंगा तटपर संगीन पत्थरोंके किले जैसे

मकानोंकी पंक्ति आरम्भ होती ह, वहाँसे किनार ही किनारे एक पुरुप आग वढ़ता जा रहा था। वह अन्धकारमें भी गढ़ोंसे हटता-वचता, सीढ़ियोंकी ठोकरें वचाता, कुछ तेजीसे जा रहा था। एक घाटपर आकर वह रुका, ऊपर को जाती सीढ़ियोंके अन्तिम छोरतक देखा और तव तेजीसे उनपर चढ़ चला। छोरपर पहुँचकर वह एक गलीमें मुड़ा। एक जगह सरकारी लालटेन अभागेके भाग्य जैसी टिमटिमा रही थी। उसका तेल समाप्तप्राय था। प्रकाशके वदले वह छायाकी ही सृष्टि कर रही थी।

वह मनुष्य एक मकानके द्वारपर आकर रुका। वह स्पष्ट ही मठ मालूम होता था। 'गंगायां मठः' कहकर लक्षणा और व्यंजना दोनोंकी सिद्धि हो सकती थी।

उस मनुष्यने लकड़ीके विशाल द्वारका कड़ा वलपूर्वक हिलाया। तुरन्त ही भीतरसे किसीने पूछा—कौन है?

शंभुगिरि।

द्वारमें वनी छोटी-सी खिड़की खुली, शंभुगिरिने दाहिना पैर उसके भीतर रखा, फिर कमरको झुकाकर सिर भीतर किया और तव वायां पैर भी भीतर कर लिया। खिड़की वन्द हो गयी।

शंभुगिरिके सामने, हाथमें दीपक लिए एक स्त्री खड़ी थी। वह भगवें रंगका एक दुपट्टा लपेटे हुए थी, दोनो वगलोंके नीचेसे और हृदयके उपर; धोतीकी तरह उसे मोड़ दिया गया था। उसका एक छोर वाँयें घुटनेतक लटक रहा था। उसके माथेपर सिंदूरका टीका था, कुछ घुंघराले केश पिंडलियोंतक छहर रहे थे। उसके गले और मणिवन्धोंपर पतले रुद्राक्षोंकी माला थी। उसकी बड़ी-वड़ी आंखोंमें मदकी एक रेखा खिंची हुई थी और उत्सुकता तथा सन्तोपका मिश्रण भी था।उसकी शरीर-रचना प्रायः निर्दोष थी। यौवनकी आभा उसके शरीरपर खेल रही थी। उसकी रचना यदि वेदाभ्यासजड़ विधाताने ही की हो, तो मानना पड़ेगा कि उनके

हृदयमें उस समय रसकी दो-चार बुंदें कहींसे टपक पड़ी थीं और वे थिरक रही थीं।

शंभुगिरिने कुछ क्षणों निर्मिमेष उसे देखा। फिर पूछा—तुम भैरवी ?

भैरवी खिल-खिल-खिल-खिल हँस पड़ी। तरल विद्रुमकी कलिकाओं-पर वाल चन्द्रकी किरणें खेल गयीं। चिवुक-कूपमें तरंगें उठने लगीं।

भैरवी आगे वढ़ी। लम्वा रास्ता, दालान, और चतुष्कोण, दीर्घ आंगन पारकर भैरवी एक कमरेमें रुकी। सामने दीवालमें कोई तीन हाथ ऊँची और ड़ेढ़ हाथ चौड़ी कालीकी मूर्त्ति थी,उसका चरण शिवपर था। मूर्त्ति लकड़ीपर खोदी हुई थी। यह उत्कृष्ट कारुकार्य था। कमरेके वीचोवीच दो-हाथ लम्वा चौड़ा एक तालाव वना था। उसमें सीढ़ियां थीं, फुहारा भी था। हाथभर ऊँचे एक पाइपसे महीन फुहारें निकलकर तालावमें गिर रही थीं।

भैरवीने फुहारेवाली पाइपपर पैर रखकर जोरसे दवाया। दीवालवाली मूर्त्ति पल्लेकी तरह एक ओर झूल गयी। वहां नीचे उतरनेके लिए सीढ़ियां दिखाई पड़ने लगीं।

भैरवीने दीपक शंभुगिरिके हाथमें दिया, कहा—महाप्रभु साधन—कक्षमें हैं।

शंभुगिरिने जिज्ञासु नेत्रोंको भैरवीके लोचनोंसे जोड़ दिया। भैरवीने कहा—तुम चलो।

शंभुगिरि भूगर्भमें प्रविष्ट हुआ। वहुत सी सीढ़ियां उतरकर वह समतल भूमिपर पहुँचा। वहां भी ऊपर ही जैसे दालान और आंगन आदि थे। वह आंगन पारकर दक्षिणकी ओरके एक प्रकोष्ठमें पहुँचा।

एक तरफकी दीवालसे सटा एक छोटा चौतरा था। उसपर कात्या-यनीकी भीषण भव्य मूर्त्ति थी। भगवतीके १० हाथ थे, ३ नेत्र थे, जटाओंका मुकुट था, माथेपर अर्ध चन्द्र था। देवी त्रिभंग–संस्थानवती थीं। उनके दाहिनी तरफके हाथोंमें त्रिशूल, खड्ग, चक्र, तथा शक्ति थीं; वायीं तरफके हाथोंमें वाण, धनुष, पाश, अंकुश, खेटक थे। चरणोंके पास छिन्न-

ग्रीव महिष पड़ा था, उसपर उनका वायां चरण था। उनकी तीव्र दृष्टि सामनेकी ओर निवद्ध थी और शूल तना हुआ था। चरणोंके पास ही सिंह भी था। वह आक्रमणकी मुद्रामें था। मूर्त्ति काले, चमकीले, पत्थरकी थी।

मूर्त्तिवाले चौतरेसे सटा, पर उससे थोड़ा नीचा, कोई चार हाथ लम्बा और हाथभर चौड़ा दूसरा चौतरा था। यह वलि-वेदी थी। वलिवेदीकी दाहिनी तरफ दो वित्तेका चौकोर कुण्ड था। यह सुवाकुण्ड था। देवीके चरणोंके पास एक निशित खड्ग रखा था। चरणोंके दोनों ओर कुछ ऊंचे, चौड़े दो दीपाधार थे। उनमें घृत भरा था और मोटी वत्तियां जल रही थीं। ये अखण्ड दीप थे। शम्भुगिरिने देवीको दंडवत् प्रणाम किया और कहने लगा—

जयत्युदञ्चद् ब्रह्माण्डं , लडड्डमरुकोद् भटम् ।
क्रीडाकलितकङ्काल—करालं भैरवीवपुः ! !
अट् टहासः स जयति , काल्याः शुभ्रांशुमण्डलैः !
येन भैरवतां नीतं , मुण्डखण्डैरिवाम्वरम् ! !
मृडान्याः शूलदण्डोसौ , जयत्यान्दोलितो मुहुः !
भाति यः सर्वदैत्यासृक् , पानक्षीवः स्खलन्निव ! !

स्तुति समाप्त कर शंभुगिरिने आंखें खोलीं। देखा, देवीके चरणोंके पास महाप्रभु बैठे हैं। शंभुगिरिने आगे वढ़कर मठके महन्त, देवीके प्रधान उपासक, सिद्धि-प्राप्त, महाप्रभुके चरणोंपर अपना माथा रख दिया।

महाप्रभुने आशीर्वाद दिया—सिद्धिरस्तु।

शंभुगिरि खड़ा हुआ।

महाप्रभुने पूछा—निर्विघ्न हुआ?

—हां प्रभु।

—किसीने देखा तो नहीं।

—नहीं प्रभु।

—कोई विशेष वात?

—मन्त्र-जपके समय कोई दौड़कर चला गया था। एक वार तीव्र र
प्रकाश हुआ था। लौटती वक्त गंगामें एक शव साथ-साथ था। जब
परीक्षा करता था तो उसे शव पाता था, जब आगे बढ़ता था तो वह
तैरने लगता था।

महाप्रभुने मंदस्मितके साथ आंखें बन्द कीं, देवीके चरणोंमें प्रण
किया। कहा—महावेतालाय नमः। वह महावेताल था। रक्षार्थ तुम्ह
साथ था। भय तो नहीं लगा ?

नहीं प्रभु !

साधु। साठ वर्षोमें तुम जैसा धीर साधक नहीं देखा। सुनो, कल म
काल रात्रि, दीवाली, है। याद है ?

हां प्रभु !

कल तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। पशु (वलिके लिए मनुष्य) भी मि
गया है। वह भी ब्राह्मण, पठित, भगवतीका भक्त ! भैरवी !

भैरवी भीतर आयी। महाप्रभुने उठते-उठते शंभुगिरिसे कहा—क
अर्धरात्रिके पहले आ जाना। भैरवी ! साधक को सुधा दो।

महाप्रभु बाहर निकल गये। पुनः लौटकर कहा—भैरवी ! साधक
आज सब स्थान दिखला देना और शयनकी व्यवस्था कर देना।

भैरवीने सुधा—कुण्डके पास रखे नारियलके आधे छिलकेको कुण्ड
भरा और अपने ओठोंसे लगा लिया। दो-तीन घूंट मद्य पीकर उसने उ
शंभुगिरिके मुंहसे लगा दिया। शंभुगिरि आंखें बन्दकर पी गया; पु
४–५ वार।

भैरवीने पूछा—बस ?

—बस।

—तो चलो।

शंभुगिरि उसके साथ चला। वह भगर्भमें साधन-कक्षको छोड़ क

न गया था। भैरवीने एक कमरा खोला। उसके भीतरसे और कई कमरोंके मार्ग थे। एकमें चूना भरा था।

भैरवीने कहा—पशुसे कार्य लेनेके वाद उसका शव चूनेमें दवा दिया जाता है। वह कुछ दिनोंमें गल जाता है, दुर्गन्ध भी नहीं होती।

भैरवी दूसरे कमरेमें चली। पत्थरका एक वड़ा-सा टांका वहां रखा था। वह जलसे भरा था। उसके नीचे ही एक हाथ भर गोल नाला था जो एक तरफकी दीवालके नीचे जाकर अदृश्य हो गया था।

टांकेके पास दो वित्ता मोटा, दो हाथ लम्वा—चौड़ा एक लकड़ीका टुकड़ा था। उसपर कई तरहके शस्त्र रखे थे।

भैरवीने कहा—चूनेसे काम न लेनेपर इसी काष्ठ—खण्डपर पशुके शवकी कुट्टी की जाती है और उसे नालेमें छोड़कर टांका खोल दिया जाता है। नाला सीधा गंगामें मिल गया है।

शंभुगिरिको नशा आ चला था, पर वह सिहर उठा। उसे लगा, इन कमरोंमें अनेक आत्माएँ विचरण कर रही हैं, अनेक पशुओंका रक्त उस काष्ठ—खण्डमें लगा है। भैरवीने कितने पशु देखे हैं?

भैरवी आगे वढ़ी। एक कोनेमें, पत्थरकी खूंटीपर मोटी—पतली रेशमकी मजवूत रस्सियां लटक रही थीं।

भैरवीने कहा—पशु-वन्धनी! कोई पशु विना वांधे संयत नहीं रहता। और वलिके समय उसका चैतन्य रहना आवश्यक है।

शंभुगिरिने कहा—भैरवी! नींद आ रही है। चलो, मुझे शयनका स्थान दिखला दो।

भैरवीने ध्यानसे उसका मुंह देखा। वह खिल-खिल हँस पड़ी। उस एकान्त-में, वहां, शंभुगिरिको वह हँसी बहुत भयानक लगी। वह पीछे लौटा, उसके पैर लड़खड़ाये। भैरवीने बढ़कर उसका हाथ अपने कन्धेपर रख लिया और उसे अपने एक हाथसे पकड़कर, दूसरा उसकी कमरमें लपेट दिया। वह बढ़ती हुई बोली—लेकिन दीपक!

—ऐसे ही चलो, मैं सहारे बिना न चल सकूंगा।

—तुम्हारा चलना भी तन्त्र हो गया कि भैरवीके बिना हो ही नहीं सकता?

लेकिन शंभुगिरि चुप ही रहा। एक तो उसने कभी भैरवीके परिहासका उत्तर दिया ही नहीं है, दूसरे इस समय उसका मन किसी अन्य लोकमें था।

भैरवीने उसे एक कमरेमें लाकर बैठाया। वह लेट गया। भैरवी चली गयी।

थोड़ी देर बाद भैरवी आयी। दीपक एक ओर रख, वह शंभुगिरिके पास बैठी। वह गहरी नींदमें था। उसके ओठोंपर हँसी थी। भैरवीने उसके माथेपर हाथ रखा, उसका हाथ अपने हाथोंमें लिया, पर वह जगा नहीं। भैरवी उसके मुंहपर झुकी। भैरवीके केश शंभुगिरिके माथेके दोनों ओर लटक पड़े। पर, भैरवी सीधी बैठ गयी और दीपक उठाकर कमरेके बाहर चली गयी।

:o: :o: :o: :o: :o:

महा-काल-रात्रि। रातको ११ बजे शंभुगिरि मठके फाटकपर पहुँचा तो खिड़की खुली देख उसे आश्चर्य हुआ। वह भीतर प्रविष्ट हुआ। तभी किसीने उसकी कलाई पकड़ ली। शंभुगिरिसे भैरवीका हाथ छिपा न रहा।

शंभुगिरिने पूछा—साधक कहां है?

भैरवीके उत्तर न देनेपर उसने प्रश्न दुहराया। भैरवीने कहा—सायंकालसे ही बैठे हैं। तुम क्यों आये?

शंभुगिरिने चकित होकर कहा—तुम! और यह पूछती हो?

भैरवी मौन रही।

शंभुगिरिने कहा—तीन वर्षोंकी साधनाके बाद महाप्रभु प्रसन्न हुए हैं। आज मेरा सिद्धि-दिवस है।

भैरवी शंभुगिरिके गलेमें लिपट गयी। वह सिसकने लगी। उसने कहा—जाओ, भागो, जाओ।

शंभुगिरिने चकित होकर और तव हँसकर कहा—मुझे नहीं मालूम था कि सिद्धिकी प्रधान वाधा तुम होओगी।

भैरवीने कुछ संयत होकर, अलग होकर कहा—सिद्ध बनोगे? आजका पशु कौन है, जानते हो?

—नहीं!

—तुम, तुम!

शंभुगिरि सहम गया। पर तुरत ही हँसकर कहा—तुम क्यों वाधा दे रही हो? या परीक्षा ले रही हो?

तुम्हे मृत्युका भय नहीं?

ना, नहीं।

मैं यहां १३ वर्षकी आयी थी। ७ वर्ष हो गये। प्रति वर्ष एक पशुकी बलि देखी है। वे सभी तुम्हारे जैसे साधक थे। सभी महाप्रभुकी पूजामें पशु बने। सभी निर्भीक थे, पर बलि-वेदीपर उनका करुण क्रन्दन मेरे कानोंमें गूंज रहा है।

शंभुगिरि विचित्र स्थितिमें पड़ गया। भैरवीने पुनः उसके गलेमें हाथ डाल दिये और अश्रुसिक्त स्वरमें कहा—जाओ, भाग जाओ। वे तुम्हारे ही आसरे वैठे हैं।

तुम मुझपर दयालु क्यों?

पता नहीं। जाओ।

भैरवी उसे पीछे हटाने लगी। शंभुगिरिने पैर कड़े कर लिये।

भैरवी! मैं प्रमाण पाये विना न मानूंगा।

तो आओ, खूब दवाकर पैरोंको।

भैरवी साधन-कक्षमें चली गयी। शंभुगिरि बाहर दुबक कर खड़ा हो गया। उसका रोम-रोम कान हो गया था।

महाप्रभुने पूछा—कै बजा ?

भैरवीने कहा—११ से कुछ ऊपर।

अच्युतानन्दने पूछा—पशु नहीं आया अभी ?

महाप्रभुने कहा—अर्ध रात्रिके पहले आ जायगा।

बाहर शंभुगिरिकी जैसे दांती लग गयी। सर्वांगसे पसीना छूट चला। वह दीवालके सहारे हो गया।

दयानन्दने कहा—है साहसी ! कल मैं उसके पास दौड़ा, लाल प्रकाश किया, तैरकर साथ ही आया; पर डरा नहीं।

अच्युतानन्द, दयानन्द और महाप्रभु एक साथ ठठाकर हँसने लगे। केवल भैरवीका शब्द न सुन पड़ा।

महाप्रभुने कहा—भैरवी ! सुधा दो।

अच्युतानन्दने कहा—प्रसाद कर दो।

शंभुगिरि मानस-नेत्रोंसे देखने लगा—भैरवीने सुधा-कुंडसे मद्य ली, उसमेंसे दो-तीन घूंट लेकर महाप्रभुके मुंहसे वह नारियलका टुकड़ा लगा दिया।

महाप्रभुने पूछा—खड्ग ठीक है न।

दयानन्दने भयंकर भावसे कहा—एक हाथमें वारान्यारा ! पशुकी परम मुक्ति !

अच्युतानन्दने कहा—इसी पशुपर भैरवीकी माया न चली। शेष तो इस शिलापर शलभ हो गये।

दयानन्दने हि-हि-हि-हि- करके कहा—पशु ठहरा पशु ! मरनेके पहले कुछ आनन्द भी नहीं, एँ !

महाप्रभुने कहा—भैरवी ! तुम द्वारपर ही रहो- पशुको लेकर ही आना। इसके बाद तीन पशुओंकी और आवश्यकता है। बस, जीवन सफल हो जाय !

भैरवी वाहर निकली। भीतर किसी वातपर अट्टहासका आवर्त्तन चलने लगा।

शंभुगिरि अर्द्धमूर्छित-सा था। भैरवीके छूनेपर उसमें कुछ चैतन्य आया। उसने कसकर भैरवीका हाथ पकड़ लिया। वह तेजीसे कांप रहा था। भैरवीने उसे धीरेसे आगे वढ़ाया। कुछ दूर आनेपर भैरवीने फुसफुसाकर कहा—सम्हलकर चलो, आवाज हुई और गये !

शंभुगिरि सांस रोककर चलने लगा। भूगर्भसे वाहर आकर उसने सांस ली। वह हांफ रहा था। वह वोलना चाहता था, पर गलेमें कांटे पड़ गये थे।

भैरवीने कहा—ठहरो, मैं जल ला दूं !

शंभुगिरिने उसके हाथ कसकर पकड़ लिये, उसे जाने न दिया।

भैरवीने कहा—अव तुरत निकल जाओ।

वे आगे वढ़े। खिड़की खुलते ही शंभुगिरि कूदकर वाहर निकला, पर वहीं रुक गया।

भैरवीने उसके हाथ पकड़ लिये। वे कांप रहे थे। भैरवीने उन्हें अपने माथेसे लगाया। वह सिसकने लगी। शंभुगिरिने हाथ छुड़ा लिये। एक हाथ उसके कंधेपर रखा, एक हाथ उसके सिरपर फेरने लगा।

भैरवीने सिर जरा वढ़ाकर उसके कंधेपर रख दिया, कहा—मुझे ले चलो।

शंभुगिरि अपना काम करता रहा।

भैरवी सीधी खड़ी हुई, उसने शंभुगिरिको भर आंख देखा, फिर कहा—नहीं, तुम जाओ। भैरवी कव किसकी हो सकती है ! पर, प्रतिवर्ष, आजके दिन याद करोगे ?

शंभुगिरिने मुंह वढ़ाकर उसके अधरोंपर एक चुम्वन अंकित कर दिया।

भैरवीने कहा—मुझे जीवनका पाथेय मिल गया। अव तुम मुझे कभी याद करो, न करो।

तभी अकस्मात् शंभुगिरिने गलीकी ओर छलांग मारी और कुछ ही क्षणोंमें वह आंखोंसे ओझल हो गया।

भैरवी कुछ चकित हुई। तब उसके आंसू बहने लगे। नीलांभ कमलोंसे मोती बरस चले।

× × × ×

पौन घण्टे बाद—

साधन-कक्षमें बलि-वेदीपर रेशमी डोरीसे बँधी भैरवी बैठी थी। देवीके चरणोंके पास महाप्रभु बैठे थे। अच्युतानन्द खड्ग लिए भैरवीके पास जमीनपर खड़ा था। दूसरी तरफ दयानन्द खड़ा था। महाप्रभुने कहा—मैंने देखा कि पशुने इसका चुंबन किया और भाग गया। इसीने उसे सूचित कर भगाया। तू कबसे उससे प्रेम करती थी?

भैरवीका मुखमण्डल दीप्त था। उसने उत्तर दिया—पता नहीं।

पता नहीं?

सच ही कह रही हूँ। तुम सब नकली साधक हो।

हम?

हां। उसने मेरी ओर कभी दृक्‌पात भी न किया था।

पर वह तुझसे प्रेम तो करता था!

नहीं।

पर उसने तेरा चुंबन किया!

हां, आज ही। प्रथम और अन्तिम बार।

तूने उसे क्यों भगाया?

पता नहीं।

तू न कहती तो वह न भागता?

नहीं।

और स्वीकार करती है?

हां।

दण्ड !

वह भी। वह तो वरदान ही होगा।

अच्युतानन्द !

अच्युतानन्दने खड्ग कसकर पकड़ा। दयानन्द भैरवीकी ओर बढ़ा। भैरवीने कहा—मत छुओ। मैं स्वयं सो जाती हूँ।

पर वह जकड़ी हुई थी। दयानन्दने उसे सहारा देकर औंधा लिटा दिया। वह उसके पैरोंका बन्धन कुछ ढीला करने लगा। महाप्रभु आंखें बन्दकर कुछ बुदबुदाने लगे।

तभी खच् से आवाज हुई। महाप्रभुने किसी चीजके गिरनेका शब्द सुनकर देखा—अच्युतानन्दका सिर कटकर नीचे गिरा पड़ा है, उसके धड़से रक्तका फुहारा छूट चला है, जिससे दयानन्द और भैरवी, नहा-सी उठी है। दूसरे क्षण वे चीत्कार कर उठे। तभी शंभुगिरिने उनपर खुखड़ीका सटीक वार किया। उनका सिर कन्धेपरसे झूल गया। दूसरे हाथमें वह कटकर देवीके चरणोंपर गिर पड़ा। शंभुगिरिने अट्टहास किया, कहा—देवि ! लो ! बलि लो ! ऐसा पशु कहां मिलेगा ? ब्राह्मण, पठित, तुम्हारा अनन्य भक्त !

तभी उसने घूमकर देखा। भैरवी मूर्छित हो गयी थी। उसने उसका बन्धन खोलना प्रारम्भ किया। तभी एक संन्यासीने भीतर प्रवेश किया। उसके हाथोंमें रक्तसे सनी एक खुखड़ी थी।

शंभुगिरिने बन्धन खोलना छोड़कर, घबराकर कहा—वज्रानन्द, वह दयानन्द कहां गया ?

वज्रानन्दने मुस्कुराकर कहा—दयानन्द नाम था उसका ? वह बाहर भागा तो मैंने उसे महाप्रभुकी सेवामें भेज दिया। वह दरवाजेपर पड़ा है।

शंभुगिरिने बन्धन खोल दिये। अपने वस्त्रसे भैरवीके मुंहपर हवा करने लगा। कुछ देर बाद भैरवीकी मूर्छा टूटी। वह कांपते हुए शंभुगिरिसे लिपट गयी। पूछा—तुम यहां कैसे ?

मैंने तुमसे बातें करते हुए,किसीको तुम्हारे पीछे देखा। मैं भागा और तुरत इनको लेकर आया। ये वज्रानन्द हैं, मेरे मित्र।

वज्रानन्दने कहा—ये बातें फिर होंगी। पहले इन पशुओंकी कुछ व्यवस्था करनी चाहिये।

तीनों शव चूनेके नीचे दबा दिये गये। जमीन धोकर स्वच्छ कर दी गयी।

वज्रानन्दने कहा—ये ही तीन इस मठमें रहते थे। किसीसे संसर्ग भी न था। तो वे तो तीर्थ यात्रा करने चले गये। मुझ शिष्यको छोड़ गये हैं। अच्छा, अब तुम लोग थोड़ा सो लो। पौ फटना चाहती है।

भैरवीने कहा—मुझे यहां नींद न आयेगी।

वज्रानन्दने कहा—यह शुभ लक्षण है। रुपया-पैसा क्या है?

भैरवीने उन्हें ले जाकर दिखाया। एक कमरेमें हण्डोंमें मोहरें भरी थीं। एक हण्डेमें जवाहरात थे।

वज्रानन्दने कहा—बहुत ठीक। इससे यहां पाठशाला खुल जायगी और कई जन्मोंतक उसकी व्यवस्था सुचारु रूपसे चलती रहेगी। और तुम लोग अभी थोड़ा ले जाओ। कहीं एक मकान देखकर लिखना। मैं और भेजूंगा। मकान खरीद लेना। हजार रुपया महीना भेजूंगा। कुछ हीरे भी दूंगा। गहने बनवा देना।

शंभुगिरिने कहा—मैं संन्यासी हूँ।

वज्रानन्दने धमकाया—चुप! स्त्रीका चुम्बन करके भी, शराब मन लेकर भी, संन्यासका नाम लेता है!

फिर हँसकर कहा—जोड़ी अच्छी है। एक भैरवी, एक संन्यासी।

श्रोताओंके मुँह लाल हो गये।

दोपहरको मठसे चले—कुर्ता पहने और मुण्डित मस्तकपर टोपी दिये एक पुरुष और साड़ी पहने एक महिला निकली। पीछे-पीछे स्वामी वज्रानन्द थे।

फाटकसे निकलते समय वज्रानन्दने पुरुषके कानमें कहा—सिर मुंडा होनेके विषयमें कोई पूछे तो कह देना—गया-श्राद्ध करके आ रहे हैं।

महिलाने वज्रानन्दको भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। वज्रानन्दने कहा—समझमे नहीं आता, क्या आशीर्वाद दूं; पर ईश्वर तुम्हारा सर्वतोभावेन मंगल करे।

——:०:——

महादान

बात उस समयकी है जब यवनोंने भारतपर आक्रमण नहीं किया था और वह स्वतन्त्र था।

बहुत वर्षों बाद प्रयागका कुम्भ पड़ा था। १५-१७ कोसतक त्रिवेणी-तट जनारण्य हो गया था। आदमियोंमें आदमी खो जाते थे।

अवन्ती-नरेश भी पधारे थे। नये-नये सिंहासनारूढ़ हुए थे, वय भी नवीन था, कौतूहल भी तरुण था, प्रजाके हृदयपर आस्तिकताकी मुद्रा भी अंकित करती थी।

अवन्ती-नरेशके दूष्य (तंबू) ४-५ कोसमें थे। सीमा-निर्देशके लिए परिखा (खाईं) खोदकर, एक कुल्या (छोटी कृत्रिम नदी) द्वारा वह त्रिवेणी-जलसे पूर्ण कर दी गयी थी।

परिखासे घिरे स्थलके मध्यमें अवंती नरेशका स्वप्नागार (शयन-गृह) था। थोड़ा हटकर देवी (पटरानी) का निवास-स्थान था। उससे सटे देवीकी दासियों, सैरंध्रियों, चेटियों आदिके गृह थे।

अन्तःपुरके पटमंडपोंकी यह श्रेणी सशस्त्र महिला-रक्षकोंसे आवृत थी। ये प्रहरिणियाँ सचमुच चन्दन-लताओं जैसी कोमल और उग्र थीं। इनके बाद सशस्त्र वर्षवर (षंड) थे। उनके अधीन अवटीट (दबी नाकवाले), चिपिट (नासिकाहीन), किरात सेवक थे। शुभ्रवसन कंचुकी भी कभी-कभी दीख जाते थे।

उनके बाद ही सेना (सैनिकोंका निवास स्थान) था। उन वास-गृहोंमें भिन्न-भिन्न सुरा-गन्ध वातावरणमें फैल रहा था; कहीं अखाड़ा हो रहा था, कहींसे उन्मत्त गायन सुन पड़ता था। सैनिकोंके यौवनकी उद्दामता, उनकी

चपलता और मूर्च्छना-पाण्डित्य प्रकट था। कहीं सधे हाथसे मृदंग बज रहा था—थो घो थोखे-खचोघेङ् णादम्यङ्वो—द्धोके ताख खेखेण कसुगुकवेङ्णो खिखेङ्ताखेङ्णम् किटिकिटिडघेंगवे. घेकटुकघुगुदुकंलवला-खोखोवाध्रुनेटा माणिणम्मां किटिवत्थि.......। 'किटि-किटि' और 'घो घो' के ध्वनि तारतम्यसे ज्ञात हो जाता था कि मृदंग किसी अवलाके हाथोंमें है।

वेशसे उत्तर सभा-मण्डप था। दिनमें वहां कोई भी आ सकता था। रात्रिको विशिष्ट पुरुष ही प्रवेश पाते थे। उस समय महाराज कभी नृत्य देखते थे, कभी गान सुनते थे, कभी इन्द्रजाल देखते थे, कभी आख्यायिका सुनते थे, कभी काव्यचर्चा करते थे।

सभामण्डपसे दक्षिण, परिखासे सटे हुए दूष्योंमें दिवाकीर्त्ति (नापित), निर्णजक (धोवी), वैवधिक (कवाड़ी), कितव (पासे फेकनेमें धूर्त्त), वैतंसिक (व्याध), पाणिघ (गान तथा नृत्यके समय ताली वजानेवाला), कुशीलव (चारण); शाम्वरी (ऐन्द्रजालिक) तथा अन्य भृतक (नौकर) थे। उसी ओर गंजा (मदिरागृह) थी। उससे सटे गृहमें अवदंश (चखनी) वन रहे थे—तरह-तरहकी नमकीन वस्तु, शूलाकृत (कवावे-सीक) आदि।

महाराजके संकेतसे सभागृहमें नृत्य वन्द हो गया। नर्त्तकी कुसुमसेनाको पुरस्कार मिला। महाराज उठे। तोरण-द्वारपर गोमुख, हुडुक, झर्झर, मर्दल और शंख वजे। यह सभा-भंगकी सूचना थी।

सैकड़ों दरवारी पदक्रमसे महाराजके पीछे चले। कुछ दूर आकर महाराजने सवको विसर्जित किया। अव महाराज आगे चले। उनके आगे और अगल-वगल उल्मुक-धारी और सशस्त्र अंग-रक्षक थे। कुसुमसेनाने वढ़कर उन्हें हाथोंका सहारा दिया;—अंगरक्षक १०-१० हाथ दूर हो गये।

कुसुमसेनाने दवी आवाजमें कहा—महाराजके तो दर्शन ही दुर्लभ हैं।

महाराजने सांकेतिक भाषामें कहा—यहां अवकाश नहीं मिलता।

कुसुमसेनाने उसी भाषामें कहा—देवीका भय भी होगा।

महाराज वोले—यह भी सत्य है।

कुसुमसेना बोली—देवीसे आपको प्रेम है। आपको प्रेमसे भीति है, देवीसे नहीं।

महाराजने कहा—प्रेम तो तुमसे भी है।

कुसुमसेना—प्रयागमें तो असत्य न बोलिये। मुझपर आपका मोह है।

इसी समय महाराजने एक अद्भुत ध्वनि सुनी। महाराज रुक गये। वे जिधर देख रहे थे, उधर दो अंगरक्षक बढ़े। शब्द कुछ उच्च हुआ। ज्ञात होता था कि कोई किसीका गला घोंट रहा है।

अंगरक्षक लौट आये। उनमेंसे एकने गंभीर रहनेकी चेष्टा करते हुए कहा—आर्य वसंतक संगीत-साधना कर रहे हैं।

महाराज उधर ही बढ़े। थोड़ी दूरपर एक विशाल वट-वृक्षके नीचे कुशा बिछाकर, उनपर आर्य मैत्रेयक विराज रहे थे। उनकी गोदमें उल्टी कंठोल-वीणा थी, उनके नेत्र बन्द थे, उनके मुंहसे अद्भुत शब्द निकल रहे थे।

उल्काओंके प्रकाशने जैसे चौंककर आर्य वसन्तकने नेत्र खोले और बैठे ही बैठे कहा—स्वागतम् ते महाराज!

महाराजने कहा—क्यों मित्र! यह क्या?

वसंतकने उत्तर दिया—क्यों! विरहिणी ब्राह्मणी इस समय क्या करती होगी?

कुसुमसेनाने कहा—वसन्तकजी! वे [illegible] एक दूसरेसे एक साथ दूर [illegible] शयन कर रही होंगी।

वसंतकने कहा—अयि! बाले! वियोगी ब्राह्मणके [illegible] करेगी तो [illegible] इसीलिए [illegible] हो जायगी।

[illegible] कहा—[illegible]! [illegible] नहीं आता।

[illegible] कहा—[illegible] है।

कुसुमसेनाने पूछा—[illegible]?

[illegible] बोले—[illegible] हैं न, [illegible]!

कुसुमसेनाने कहा—स्त्री हीसे शिक्षा लेनी थी तो मेरे पास आते।

वसंतकने कहा—तुम्हारी शिक्षा तो वीणाके विना होती ही नहीं! वह तो वहुत भारी है। रहने दो! मैं इसी चाण्डाल-वीणासे विरह-यापन करूँगा।

महाराजने कहा—उलटी क्यों लिए हो।

वसतकने कहा—चाण्डाल-वीणा है न। इसे वजानेका यही विधान है। विरह चाण्डाल है, वह चाण्डाल-वीणासे ही दूर होता है।

कुसुमसेनाने कहा—वसन्तजी! वट-वृक्ष अमर होता है, जानते हो! उसके नीचे वैठोगे तो विरह भी अमर हो जायगा।

वसन्तजी उछलकर उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—साधु भाषण किया! तुम्हारे पिता कोई नैयायिक थे।

महाराजने कहा—मित्र! आज तुम्हारी वुद्धि वहुत निर्मल है।

वसन्तकने कहा—तो महाराज! मुझे अपने शासनमें कोई पद दीजिये।

महाराजने पूछा—गणिकाध्यक्ष वनोगे?

वसन्तक वोले—नहीं महाराज! उनके विभ्रमोंका संकेत समझना आप ही जैसोंका काम है। मुझे तो उत्कोच-विभागाध्यक्ष वना दीजिये।

कुसुमसेना वोली—उत्कोच (घूस) विभाग तो है ही नहीं।

वसन्तने कहा—यही तो अनर्थ है। जव उत्कोच-ग्रहण होता है तो उसका विभाग क्यों न रहे।

महाराजने पूछा—उत्कोच कौन लेता है।

वसन्तकने कहा—महाराज, नाम न वताऊँगा। महामन्त्रीजीको कल सूदाध्यक्ष (रसोई घरका अध्यक्ष) का नाम वतलाया था। इसके ५ मिनट वाद ही महानस (रसोई घर) के सव कार्यकर्ता वदल दिये गये।

महाराज—उसने किससे उत्कोच लिया था।

वसन्तक—आपके चिर-शत्रु कांची नरेशकी कात्यायनी (जादू-टोना जाननेवाली, काषाय-वस्त्रधारणी, अधेड़ स्त्री) से।

देर बाद सैरन्ध्री चली गयी। थोड़ी देर बाद संचारिका भी उठ गयी। उसके साथ अन्य स्त्रियां भी।

देवीने पूछा—आज सभामें वीणावादन हुआ था ?

महाराजने कहा—हुआ था।

देवीने कहा—तो वीणाधारिणीको न आनेको कहूँ ?

महाराजने इसकी भी स्वीकृति दी। तांबूलकरंकवाहिनी निषेध करने चली गयी।

देवीने पुनः चपक भरे।

महाराज बोले—आज सभामें दानचर्चा हुई थी।

देवीने पूछा—क्या निर्णय हुआ ?

महाराज—वसन्तकने कहा कि अपना भोजन किसीको दे देना महादान है। अन्तिम निर्णय यह हुआ कि पत्नी-दान ही महादान है।

देवीने एक शारी उठाकर कहा—आठ! आपकी शारी मर गयी।

महाराजने कौड़ियां फेंकी। कहा—कुम्भके अवसरपर कई नरेश यह दान कर चुके हैं।

देवीने अपनी उरःसूत्रिका (मोतीकी माला) के तरल (मध्यमें ग्रथित मणि) से खेलते हुए कहा—आप भी उनमें अपनी गणना कराना चाहते हैं ?

महाराज—इच्छा तो है।

देवीकी भृकुटि अपने स्थानपर न रही। उन्होंने पूछा—इस इच्छाकी घोषणा सभामें आपने की ?

महाराजने कहा—हां।

देवी—आर्य वसन्तकने क्या कहा ?

महाराज—वे उसी समय बाहर चले गये। उनकी ब्राह्मणीका पत्र आया था।

देवी—वे अपना विरोध प्रकट करनेके लिए ही चले गये। उनकी ब्राह्मणीका पत्र तो परसों ही आया था।

महाराज—इसमें दोष क्या है ?

देवी—इसमें गुण क्या है ?

महाराज—पुण्य और यश।

देवी—जिन लोगोंने यह महादान नहीं किया, उन्हें और कार्योंसे पुण्य और यशकी प्राप्ति नहीं हुई ?

महाराज—क्यों नहीं !

देवी—तो आप भी पुण्य और यशके अन्य कार्य कीजिये ।

महाराज—मैं सभामें कह चुका हूँ।

देवी—मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी हूँ। मुझसे विना परामर्श किये आपने क्यों कहा ?

महाराज—मुझे आशंका न थी कि तुम विरोध करोगी।

देवी—अव प्रत्याख्यान कर दीजियेगा।

महाराज—यह नरेशोंकी नीतिके विरुद्ध है।

देवी—तो आप मेरा दान करेंगे।

महाराज—वह तो कुछ क्षणोंकी वात है। तुम्हारा मूल्य देकर पुनः ले लेंगे।

देवी—दानकर पुनः मोल लेना, मोल लेनेका निश्चय करके ही दान करना , यह सव धर्म-सम्मत है ?

महाराज—लोग करते तो यही हैं।

देवी—इससे पुण्य भी होता ही होगा !

महाराज मौन रहे।

देवीने कहा—तथास्तु। मैं वही करूँगी, जिसमें आपको पुण्य हो, आपकी कीर्त्तिका विस्तार हो, लोग आपको वहुत दिनों स्मरण करें।

महाराजने कहा—मुझे तुमसे यही आशा थी।

देवी—पर एक समय (शर्त्त) है।

महाराज—कहो।

देवी-दानपात्रका निश्चय हो चुका है।

महाराज—हां।

देवी—दानके पहले उन ब्राह्मण देवको बुला दीजियेगा। मैं उनसे कुछ बातें करूँगी।

महाराज—क्या ?

देवी—मैं उन्हें उपाय बताऊँगी, जिससे वे मेरा अधिकसे अधिक मूल्य पा सकें।

महाराजने प्रसन्न होकर कहा—वसन्तक प्रातःकाल उन्हें तुम्हारे पास ले आवेंगे।

× × × ×

दानमण्डप सजा हुआ था।

कोसोंतक ढालुआं उल्लोच (चन्दोआ) था। बांस, कपड़ों और पुष्प-पत्रोंसे लपेटे हुए थे। मध्यमें एक वेदी थी। उसके चारो ओर आसन थे। उसके चारो ओर दरियां बिछी थीं। बीच-बीचमें मार्ग थे। उसके बाद दान-सामग्री थी।

एक ओर सितशूक (यव), हरिमंथक (चना), तोक्म (अपक्व यव) गोधूम्र (गेहूँ) आदि अन्नोंके कूट थे। उनके बाद क्षौम (छालोंसे बने वस्त्र), कार्पास (सूती वस्त्र) कौशेय (रेशमी वस्त्र), कंबल, स्थूल शाटक (मोटे चदरे), उत्तरीय, कूर्पासक (चोली), नीशार (रजाई) अर्धोरुक (लहंगा), शाटी (साड़ी) आदिका ढेर था। तदन्तर लवंग, वंशक, अगुरु, सर्जरस (राल), यावन (लोहवान), मृगमद, हिमवालुका (कपूर), गन्धसार (चन्दन), कुचन्दन (लाल चन्दन), आदि थे। उनके बाद सुवर्ण-मंच (सोनेका पलंग), दीपाधार, प्रतिग्राह (पीकदान), प्रसाधनी (कंघी), दर्पण, व्यजन, आदि थे। तब ताटंक, कुण्डल, प्रालंबिका (सोनेकी सिकड़ी), नक्षत्रमाला (२७ मोतियोंकी माला), आवापक (कड़ा), केयूर, ऊर्मिका (अंगूठी), रशना (करधनी), क्षुद्र घंटिका (पायजेब) आदि आभूषणोंकी राशि थी। इसके

सहसा देवीने कांपती पर ऊँची आवाजमें पुरोहितसे पूछा—दानका क्या अर्थ है?

पुरोहितने कहा—स्वस्वत्वनिवृत्ति।

देवी—अर्थात्?

पुरोहित—अर्थात् आपपर ब्राह्मणदेवका पूर्ण अधिकार है, महाराजका नहीं।

देवीने आगे बढ़कर एक अंगरक्षककी कमरसे कटार निकाल ली और कहा—मार्ग दो, जाने दो।

अंगरक्षकने सिर झुकाकर कहा—इसे काटकर चली जाइये।

देवीने महाराजसे कहा—अग्रिम कुंभमें पुनः महादान कीजियेगा?

महाराजका सिर झुक गया।

देवीने कहा—आपके वंशका कोई उत्तराधिकारी महादान करेगा?

महामन्त्रीने व्याकुल कण्ठसे कहा—देवि। मैं वचन देता हूँ, अब ऐसा न होगा।

देवीने ब्राह्मणसे कहा—देवता! मुझे एक भिक्षा दोगे।

ब्राह्मणने साग्रह कहा—अवश्य देवि!

—तो आप मुझे स्वतन्त्र कर दें, मुझपर अपना अधिकार न रखें।

ब्राह्मणने सोत्साह कहा—तथास्तु। तुम अब स्वतन्त्र हो।

जनताने ब्राह्मणका प्रचण्ड जयघोष किया। महाराजका सिर और झुक गया।

आर्य वसन्तकने कहा—देवता। आप ठगा गये! विना मूल्य ही स्वतन्त्र कर दिया।

दूसरे ही क्षण आर्य वसन्तकने चीत्कार किया—देवी! देवी!

और वे छलांग मारकर देवीकी ओर दौड़े। पर, देर हो गयी थी। देवीके हाथकी कटार, देवीके हृदयके पार हो चुकी थी।

——:०:——

पराजयका अन्त

डेढ़ सौ वर्ष हुए—बंगालका नवद्वीप न्यायशास्त्रके लिए प्रसिद्ध था। न्याय शास्त्रमें विशेष योग्यता प्राप्त करनेके लिए, भारतके कोने-कोनेसे विद्यार्थी वहां पढ़ने जाते थे। उस समय वहांके यदुनाथ और हरिनाथ भट्टाचार्यका नाम बच्चे-बच्चेके मुंहपर था। ये दोनों भाई अद्वितीय तार्किक थ और शास्त्रार्थमें कभी हारे न थे।

वर्धमानके महाराज उन्हीं दिनों नवद्वीप पधारे। इसका कारण था। वे अपने राज-पण्डितसे यदुनाथ हरिनाथका शास्त्रार्थ कराना चाहते थे। महाराजके पितामह और पिताके राजपण्डित नवद्वीपमें पराजित हो चुके थे। महाराज इस वार उस कलंकका मार्जन करना चाहते थे। महाराजके राजपण्डित इस शास्त्रार्थके लिए तीस वर्षोंसे तैयारी कर रहे थे। यह रहस्य गुप्त न था। अतः महाराजके नवद्वीप आते ही सर्वत्र चांचल्यकी सृष्टि हुई। दूर दूरके नैय्यायिक और अन्य शास्त्रोंके विद्वान् यथाशीघ्र नवद्वीपमें आ पहुंचे। वे यह शास्त्रार्थ देखना चाहते थे।

यदुनाथने दो हजार बत्तिसवां दण्ड मारते हूए कहा—हरि! कल शास्त्रार्थ है।

हरिनाथकी यह तेइस सौवीं बैठक थी। उन्होंने झुकते हुए कहा—हूं।

दस मिनट बाद हरिनाथने कहा—महाराजके पितामह औरापिताके राजपण्डित भी आये थे।

यदुनाथने झुकते हुए कहा—हूं।

हरिनाथ बोले—कल इन्हें ब्राह्मणोंकी पद-रज देनी होगी।

यदुनाथने हँसी रोकते हुए कहा—हूं।

पांच मिनट बाद यदुनाथने कहा— विस्मृत न हो।

हरिनाथने कहा—ऊँ हूँ।

\+ + + +

बस्तीके बाहर मैदानमें लोग एकत्र होते जा रहे थे। पण्डित-वर्ग दरियों और पटुएकी टाटोंपर बैठा था। उन्हें चारों ओरसे जनता घेरे हुए थी। पण्डितोंके बीच ३५-४० हाथ भूमि रिक्त थी। उसी समय महाराज पधारे। उनके पीछे राजपण्डित, अन्य पण्डित, तथा कुछ अनुचर थे। ये लोग लम्बी भीड़ पाकर केन्द्रमें पहुँचे और रिक्त भूमिमें बैठे। चारो ओर भ्रमर-गुंजन-सा होने लगा। लोग महाराजपर पुष्प, धानका लावा और चन्दनका चूर बरसाने लगे।

यदुनाथ और हरिनाथ इष्ट देवताको प्रणाम कर घरसे निकले। द्वारपर कुलवधुओंकी भीड़ थी। वे मांगलिक गीत गा रही थीं। उन्होंने दोनों भाइयोंकी आरती की, मालायें पहनायीं, पान दिये।

एक वधूने कहा—देवर, पराजित करके आना।

यदुनाथ बढ़ते हुए बोले—आशीर्वाद दो।

हरिनाथ रुके। उन्होंने कहा—भाभीजी! तुम भी चलो। तुम रहोगी तो उसकी पराजय निश्चित है।

भाभीने कहा—तुम हार आओ तो मैं तुम्हारी अर्धांगिनी लेकर जाऊँगी। वह भी एक शास्त्रकी पण्डिता है।

हरिनाथ लज्जित होकर आगे बढ़े।

भाभीने कहा—हार मानकर जाओ।

यदुनाथ और हरिनाथने सभामें प्रवेश किया। नवद्वीपकी जनता हर्षोन्मत्त होकर जयकार करने लगी, पुष्प और धानके लावेकी वृष्टि करने लगी।

बाहरके एक मनुष्यने बगलवालेसे पूछा—'शास्त्रार्थमें मल्लोंका क्या काम है?' बगलवाला नवद्वीपका था। उसने कहा—ये ही यदुनाथ और हरिनाथ हैं।

महाराजने उठकर दोनोंके चरणोंमें प्रणाम किया। ये लोग आशीर्वाद देकर बैठे।

हरिनाथने पूछा—काका कहां हैं ?

एक पण्डितने उत्तर दिया,—उन्हें लेने जाना होगा तो !

महाराज उठे ! उनके साथ यदुनाथ भी चले। ये लोग विश्वनाथ न्यायपंचाननको लेने जा रहे थे। उनके नवद्वीपमें रहते अन्य कोई सभापति न हो सकता था।

थोड़ी देर बाद न्यायपंचानन सभापतिके आसनपर विराजमान हुए। सर्वत्र शान्ति छा गयी।

न्यायपंचाननने कहा—यदु और हरि मिलकर शास्त्रार्थ करते हैं, यह तो सबको ज्ञात ही है।

राजपण्डितने कहा—तो मुझे भी अपने दलके साथ शास्त्रार्थकी अनुमति हो।

न्यापंचाननने कहा—तथास्तु ! तो पूर्वपक्ष करो।

राजपण्डितने कहा—वे ही करें।

न्यापंचानन बोले—नहीं, तुम ही करो। तुम अतिथि हो।

राजपण्डित पूर्वपक्ष करने लगे। आध घण्टा बीतनेपर उनका पूर्वपक्ष समाप्त हुआ।

न्यायपंचाननने कहा—साधु !

हरिनाथने दस मिनटमें खण्डन किया।

राजपण्डितने खण्डनमें एक त्रुटि दिखलायी।

यदुनाथने हरिनाथके उत्तरसे ही समाधान किया।

खण्डन और समाधान चलने लगा। धीरे-धीरे अंधकार होने लगा।

महाराजने सभापतिसे निवेदन किया—आज शास्त्रार्थ बन्द हो। कल पुनः......................

हरिनाथने कहा—पितृव्य ! शास्त्रार्थ एक ही आसनसे समाप्त होना चाहिये। अवश्य, यदि आपको कष्ट न हो।

सुंघनी सूंघकर न्याय पंचाननने कहा—कष्ट ! यह तो परम आनन्दका अवसर है। सब लोग सन्ध्या-वन्दन करें, इसके बाद शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो।

लोग चारो दिशाओंमें फैल गये। महाराजके उल्मुकधारियोंने उल्मुक जलाये। हरिनाथ और यदुनाथ बैठे ही रहे।

महाराजने उठते हुए कहा—आप लोग भी निवृत्त हो लें।

यदुनाथने कहा—हम सन्ध्योपासन कैसे करें! हम दो अशौचोंसे ग्रस्त हैं।

हरिनाथने कहा—मोहरूपिणी माताका निधन हो गया है, अतः मरणाशौच है। ज्ञानरूप पुत्रका जन्म हुआ है, अतः जननाशौच है।

महाराज मुस्कुराकर चले गये।

एक घण्टे बाद लोग लौटे तो देखा कि यदुनाथ और हरिनाथके पास एक वस्त्रपर भीगा चना, गुड़ और मूलियां रखी हैं तथा वे निविष्ट चित्तसे उन्हें खा रहे हैं।

उल्मुकधारी जनताके बीच-बीचमें खड़े हो गये। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया। शास्त्रार्थमल्लोंके दांव-पेंच होने लगे।

तीव्र खण्डन-मण्डन चलने लगा। प्रातःकाल होनेके पहले ही राज-पण्डित तथा उनका दल एक-एक बातका उत्तर देनेमें १०-१० मिनट मौन होने लगा। सूर्योदयके समय यह दल आध घंटेतक मौन रहा।

न्यायपंचाननने कहा—महाराज ! हर्षकी बात है कि मुझे निर्णय न करना पड़ा। स्वतः ही निर्णय हो गया।

महाराजने मस्तक झुका लिया। यदुनाथ और हरिनाथने न्याय-पंचाननके चरणोंपर मस्तक रखा।

उन्होंने कहा—साधु ! जय-पराजय तो कुछ होता ही है, पर तुम लोगोंने आज अलौकिक बुद्धिका परिचय दिया। चिरंजीव !

गगनभेदी जयध्वनि होने लगी। पुष्पवृष्टिसे लोग ढक-से गये। कुलमहिलाओंने सभामें प्रवेश किया। उन्होंने दोनों भाइयोंको जय-तिलक किया, मिठाई और दही खिलाया। इसके बाद वे गाती हुई चली गयीं।

महाराज उठकर चले। राजपण्डित और उनका दल बैठा ही रहा।

यदुनाथने हरिनाथकी ओर देखा। हरिनाथने खड़े होकर कहा—राजपण्डितजी ! आपने बहुत अच्छा शास्त्रार्थ किया।

राजपण्डित और उनका दल भी उठ खड़ा हुआ। यदुनाथ भी उठे।

राजपण्डित और उनका दल एक ओर प्रस्थित हुआ। सहसा यदुनाथ और हरिनाथने एक दरीके कोने पकड़कर उसे उठा लिया।

हरिनाथने कहा—भो राजपण्डित ! इस दरीपर हजारों ब्राह्मणोंके चरणोंकी रज है। इसे अपने मस्तकपर ग्रहण कीजिये, बुद्धि निर्मल होगी।

यदुनाथ और हरिनाथने दौड़कर, राजपण्डित और उनके दलके सिरोंपर दरी उछाल दी और उसे झाड़ने लगे। चारो ओर अट्टहास होने लगा। राजपण्डित और उनका दल प्राण लेकर भागा।

\+ + + +

राजपण्डितकी पराजयके एक सप्ताह बाद यदुनाथ और हरिनाथकी पत्नीमें शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

यदुनाथकी पत्नी सुरमाने शास्त्रार्थका सूत्रपात किया। उसने चिल्लाकर कहा—ओ छोटी बहू ! तुम्हारे लड़ैतेने मेरी पूजन-सामग्री भ्रष्ट कर दी।

हरिनाथकी पत्नी अलकाने कहा—तो मैं क्या करूँ !

शास्त्रार्थ विस्तृत होने लगा। बच्चेको लांघकर वह पतियोंतक आ गया।

अलकाने कहा—मालूम है ! मेरे पति न होते तो जेठजीको शास्त्रार्थका मजा मिल जाता।

सुरमाने कहा—वह छात्र किसका है ?

अलका बोली—जेठजीके ! तो इससे क्या ! बुद्धि तो उनकी दी नहीं है ! वह तो ईश्वरकी देन है।

सुरमाने अतिशयोक्ति, व्यंग, व्यंजना काकु और रूपकका सहारा लिया।

अलकाने सबको इस ब्रह्मास्त्रसे निष्फल किया—मेरे पतिके भरोसे जेठजी पण्डित हैं।

रातको सुरमाने अश्रुपातसे पतिदेवको स्तम्भित करते हुए कहा—तुम्हें लज्जा नहीं आती। भाईके भरोसे पण्डित बने बैठे हो!

यदुनाथने कहा—यह तो गौरवकी बात है। ऐसे सहोदर कब होते हैं।

सुरमा बोली—मुझे मायके छोड़ आओ। मैं अलकाकी बातें नहीं सुन सकती।

यदुनाथ बोले—मैं प्रातःकाल हरिसे कहूँगा। छोटी बहू बालक है।

सुरमाने मुख्यतः अश्रुपात और अतिशयोक्तिका सहारा लेकर पतिदेवको उनकी हीनताका परिचय दिया।

पतिदेवने क्रुद्ध होकर कहा—मेरे सामने कौन शास्त्रार्थमें ठहर सकता है?

सुरमाने कहा—हरि भी नहीं न!

यदुनाथ चुप हो गये।

सुरमाने रोकर कहा—यह ताना सुनते-सुनते जीनेकी इच्छा नहीं होती।

यदुनाथ चुप ही रहे। उन्होंने करवट बदल ली।

दूसरे दिन सायंकाल यदुनाथने हरिनाथसे कहा—चलो, नौका-विहार कर आवें।

दोनों भाई चले। हरिनाथ नाव खेने लगे। ये लोग कोसों चले गये।

सहसा यदुनाथने नावकी एक पटियाके नीचेसे एक कटार निकाली और हरिनाथके पास जाकर खड़े हुए।

यदुनाथने कहा—हरि, मैं तेरा वध करूँगा?

हरिने नाव चलाते हुए ही पूछा—क्यों भैया?

यदु—तू मुझसे बड़ा पण्डित है।

हरि—मैं तो तुम्हारा ही छात्र हूँ भैया।

यदु—इससे क्या! छोटी वहू यही ताना मारती है।

हरिने हँसकर कहा—तो उसीका वध करो भैया!

यदुने कहा—नहीं, मूल ही नष्ट होना चाहिये।

हरि—मैं घोषणा कर दूँ कि तुम वड़े पण्टित हो।

यदु—कोई न मानेगा। सब जानते हैं कि तुम्हारी वुद्धि अधिक तीक्ष्ण है। अतः तुम्हारा वध करूंगा।

हरिने कुछ देर मौन रहकर कहा—भैया! यह तो भ्रातृ-वध, ब्रह्महत्या होगी।

यदुने कहा—कुछ भी हो।

हरि—भैया, तुम इतने वड़े पण्डित होकर ऐसी वात सोचते हो!

यदु—मैं तर्क करने नहीं आया हूँ।

हरि—तुम पण्डित हो, कोई ऐसा उपाय सोचा कि तुम्हें यह पाप भी न करना पड़े और तुम्हारा सन्तोष भी हो जाय।

यदुनाथ सोचने लगे थोड़ी देर वाद उन्होंने कहा—तू पठन-पाठन, शास्त्रार्थ सब छोड़ दे तो मैं तेरा वध न करूँ।

हरिनाथने कहा—भैया! फिर जीवित रहकर मैं करूँगा ही क्या! इससे अच्छा तो यही है कि तुम मेरा वध कर दो।

यदुनाथने कहा—तो तुम्हीं कोई उपाय वताओ।

हरिने वहुत देर सोचा। अन्तमें वे वोले—भैया, मैं वंग-भूमि छोड़ दूं, तव तो तुम्हें सन्तोष हो जायगा? तव तो यहां तुमसे वड़ा पण्डित कोई न रह जायगा।

यदुनाथने कुछ देर सोचा! तब बोले—यह ठीक है। तू वंगभूमिका त्याग कर। पर; तू जायगा कहां?

हरिने कहा—जहां अदृष्ट ले जाय। लेकिन भैया, मैं यही सोच रहा हूँ। कि तुम्हें इतना व्यामोह कैसे हो गया।

यदुनाथ लौटकर अपने स्थानपर बैठ गये। हरिनाथ घरकी ओर नाव खेने लगे।

+ + + +

दूसरे दिन नवद्वीपमें यह समाचार व्याप्तहो गया कि हरिनाथ दिग्विजयके लिए जा रहे हैं। लोग हरिनाथसे मिलने आने लगे। कुछ लोगोंसे हरिनाथ मिलने गये।

सायंकाल एक छप्परदार नावपर हरिनाथ आये। नावमें पुत्रको गोदमें लिए अलका बैठ चुकी थी। नावमें हस्तलिखित पुस्तकें भरी थीं।

हरिनाथने उतरकर कुछ वृद्धों और यदुनाथको प्रणाम किया और नावपर जा बैठे। उनके नेत्रोंसे अश्रु गिर रहे थे। उनके पैर कांप रहे थे।

चार नाविकोंने 'काली माताकी जै कहकर नाव बढ़ायी। थोड़ी देरमें नाव बीचमें आ पहुँची। नाविक पाल चढ़ाने लगे।

हरिनाथ छप्परके सहारे खड़े थे। उन्होंने नाविकोंसे पूछा—काशी कब पहुँचेंगे ?

एक नाविकने कहा—हवा ठीक रही तो महीने भरमें पहुँच जायेंगे।

हरिनाथ झुककर नावके भीतर गये। वे अलकासे थोड़ी दूर बैठे। उन्होंने आंसू पोछते हुए अलकासे कहा—तुमने मेरी बंगभूमि छुड़ाई, भाईसे वियोग कराया, मेरा सर्वनाश कर दिया। यदि पाप न होता तो मैं तुम्हारा त्याग भी कर देता।

अलकाने उत्तर न दिया। वह फूट फूटकर रो रही थी।

——:०:——

वैतरणी-तीरे

भारतमें एक बहुत बड़ा भूमिकम्प हुआ था। दस-पांच मिनटोंमें ही हजारों आदमी धरतीके भीतर समा गये थे। उसके ५-७ दिनों वादकी वात है।

वैतरणी नदीके उस किनारे—दो आत्माएँ खड़ी थीं; एक पुरुषकी, एक स्त्री की।

स्त्रीकी आत्माने आंखोंमें आंसू भरकर, सिसकते हुए कहा—रमेश! मेरे लिए तुम्हारी यह दशा!

रमेशने जलती आंखोंसे आसमानकी ओर ताका, उसकी आंखोंसे सहसा टप-टप आंसू गिरने लगे। तव उसने स्त्री-आत्माको आलिंगनमें वांधकर कहा—शीला! तुमने मंजूर क्यों नहीं कर लिया?

शीलाने सिसकते हुए कहा—तुम्हींने क्यों नहीं कर लिया था? पहले तो तुम्हारी ही वारी थी!

रमेशने उत्तर दिया—तुम पास रहो तो मैं सव कुछ सह सकता हूँ।

शीलाने अभिमानसे कहा—क्या मुझे ही गयी-वीती समझते हो?

रमेशका आलिंगन और दृढ़ हो गया।

इसी समय एक और आत्मा सरसे वहां चली आयी। उसे देखकर, पहचान कर, दोनों आत्माएँ कुछ घवरायीं और आलिंगनसे अलग हो गयीं।

नवीन आत्माने विद्रूपसे कहा—क्यों शीला, मुझे पहचाना?

रमेशने कहा—जी हां, आप हैं—कखग, आई० सी० एस०, शीलाके—गत मानव जीवनके पति; मानव-पिशाच!

कखगने अभ्यासके अनुसार टाई टीक करनेको हाथ उठाया, पर गला

शून्य देख हाथ नीचा कर लिया। फिर खांसकर कहा—जानते हो, मैं कौन हूं?

रमेशने शीलाका हाथ पकड़कर कहा—कहा तो। नरपशु! नीच! कखग, आई० सी० एस०। पर यह आपकी अदालत नहीं। यह वैतरणीका तट है। और शारीरिक वल मुझमें पहले भी तुमसे अधिक था, और अव भी इसे भूल न जाना।

कखगने कहा—शीला! तुम्हें शर्म नहीं आती?

शीलाने उग्र भावसे कहा—और तुम्हें? मैं पूछती हूँ, मरनेके वाद तुम्हारा मुझपर अधिकार क्या है?

विधानज्ञ आई० सी० एस० महाशयकी आत्मा यह सुनकर कुछ देर चुप रही, फिर वोली—तो तुम लोग मुझे देखकर चौंके क्यों थे?

रमेशने उत्तर दिया—संस्कार! वे अभी साथ हैं। तुमने भी तो टाई ठीक करनेको हाथ उठाया था।

शीलासे कखगने पूछा—इसे तुम्हारा ही जवाव मान लूं?

शीलाने कहा—जी हां।

कखगने पूछा—मरनेके वाद तो अधिकार न रहा, पर पहले तो था। तुमने मुझे धोखा क्यों दिया? अपने इस मास्टरसे प्रीति क्यों जोड़ी?

शीलाने जवाव दिया—तुमने मेरे साथ क्या किया था? मैं टहलकर आ रही थी। तुमने जवरन् मुझे अपनी मोटरमें डाल लिया। हफ्ते भर छिपाकर रखा। इसी वीच छलसे और वलसे शराव पिलाकर मेरा धर्म नष्ट किया। मेरे साथ अपने फोटो खिंचवाये, मेरा........

शीलाका गला रुद्ध हो गया। गला साफकर उसने कहना शुरू किया—फिर मुझे छोड़ दिया अपने कैदखानेसे। पिताजीकी थानेमें रिपोर्ट न लिखी गयी, ऊपरके किसी हाकिमने न सुना; क्योंकि तुम उनके दोस्त थे। हारकर पिताजीको तुमसे मेरी शादी करनी पड़ी।

रमेशने कहा—जरा सुनो,

शीलाने जारी रखा—तुम्हारी शादी हो चुकी थी, बच्चे भी थे। मैंने अपनी किस्मतको रो कर तुम्हें माफ कर दिया। तुम्हारी सेवा करने लगी, तुम्हारी पहली स्त्रीको अपनी बड़ी बहन मानकर उनकी सेवा करने लगी, तुम्हारे उन बच्चोंको अपना मान लिया।

कखगने कहा—सुनो भी.......

शीलाने कहना न रोका—तुम बाहर गये। मुझे ज्वर हुआ। मेरी उन बहनजीने बड़े स्नेहसे उपचार शुरु किया। एक दिन एक दवा दी। दूसरे दिन गर्भपात हुआ।

कखगने चौंककर, ऊँची आवाजमें कहा—शीला! उसने.......

शीलाने कहा—हां, हां! उन्हींकी कृपा थी। मैंने कहा नहीं तुमसे। फायदा क्या था? न तुम मानते न वे मानने देतीं। लहूका घूंट पीकर रह गयी। लेडी डाक्टरने बादमें मुझसे कहा—'अब बच्चा न हो सकेगा।'

कखगने कहा—तुम कहकर तो देखतीं!

शीलाने कहा—बादमें सोचा, अगर तुम मान गये तो उनकी जिन्दगी खराब होगी। मेरा नुकसान तो पूरा न होता।

रमेशने शीलाके कंधेपर हाथ रखा, उसे सहारा दिया।

शीलाने कहा—तुमसे मैं प्रेम तो न करती थी, पर बेवफा न थी। वह तुमने ही बनाया।

कखगने चौंककर कहा—मैंने?

—हां तुमने! दो पत्नियां रहते भी तुम कब माने? रोज ही तो किसी न किसीको लाते थे घर। मुझे ही खातिरदारी सहेजी जाती थी। न करनेपर तुम मारते थे, तुम्हारे हंटरोंके दाग शरीरपर अब भी होंगे। तब मैं सोचती थी—मैं भी तुमसे बदला लूं। यहींसे मेरा मानसिक पतन प्रारम्भ हुआ। कारण थे तुम।

कखगने कहा—मगर, मगर.......

शीलाने रोककर कहा—अन्तमें एकको लाकर तुमने घरमें ही रख

लिया। तव भी मैं न वोली। तुमने उससे मुझे घरकी गवर्नेस वताया। वह पार्ट भी मैं अदा करती रही! पर उसे यह भी वर्दाश्त न हुआ कि मैं वहां रहूँ। तव तुमने मुझे दूसरे शहरमें भेज दिया। पढ़नेके लिए। कहा कि तुम इंट्रेंस पास करो, तव हमारी सोसायटीके काविल होओगी। मैं भी ऊव चुकी थी, चली गयी।

कुछ रुककर शीलाने कहा—अपने दोस्तोंकी याद है?

कखगने कहा—उनपर मुझे गर्व है।

शीलाने कहा—होना ही चाहिये। आखिर तुम्हारे ही दोस्त तो! सवने मुझसे सहानुभूति दरसायी और उसका दाम चाहा। वह दाम था—मैं, मेरा प्रेम अर्थात् मेरा शरीर।

कखगने कहा—गलत वात!

शीलाने कहा—मुझे सवसे घृणा हो गयी। मैंने सवके मुंहपर थूका। पर तुम्हारे दोस्त तो! मैंने जव स्कूलमें नाम लिखा लिया, वहीं वोर्डिंग-में रहने लगी; तव भी वे महापुरुष वीच-वीचमें भेंट करने आते थे। ऐसे भावसे आते थे, जैसे खुद न आये हों; आनेकी इच्छा भी न रही हो, पर न जाने कैसे आ गये हों।

कखगने व्यंगसे कहा—तो इसीलिए तुम सालभर वाद वोर्डिंग छोड़कर वाहर रहने लगी थीं?

शीलाने कहा—जी नहीं! यह वात न थी। उस स्कूलके धर्मप्राण संस्थापकजी वोर्डिंगकी लड़कियोंको अपनी सेवामें वुलवाया करते थे। जो न जाती थी, वह व्यभिचारिणी कहकर निकाल दी जाती थी। कहीं मुझ-पर भी उनकी कृपादृष्टि हो और मैं भी निकाल दी जाऊँ, इसी भयसे मैंने वोर्डिंग छोड़ा था। मैंने उन्हें देखा भी न था, पर उनके इस कामसे उनसे तीव्र घृणा हो गयी थी।

कखगने मौन ही रखा।

शीलाने कहा—मैं वाहर रहने लगी। तुम्हें तो परवाह न थी कि

में कहां रहूँगी, क्या करूँगी। मैंने तुम्हें पत्र लिखा कि एक प्राइवेट टयूटरकी जरूरत है।

कखगने कहा—हां, और मैंने अपन एक मित्रसे कहा। उन्होंने (रमेश-की ओर हाथकर) इस नीचको एक पत्र लिखकर तुम्हें पढ़ानेको ठीक किया। उनका कहना था कि ऐसा चरित्रवान और योग्य व्यक्ति संसारमें नहीं है।

शीलाने कहा—ठीक कहा था। एसा चरित्रवान् व्यक्ति नहीं मिलेगा। इन्हें मैंने ही बिगाड़ा।

रमेशने प्रतिवाद किया—नहीं शीला! मेरे कारण तुम पथभ्रष्ट हुई।

कखगने एक-एक बार दोनोंकी ओर देखा।

शीला बोली—ये 'नीच' पढ़ाने आने लगे। मैं इनकी ओर देखती भी न थी। ये भी न देखते थे। पर, मैंने सोचा कि तुम्हारे दोस्तके भेजे हैं, साल दो साल इनसे पढ़ना है; जरा जांच लूं।

रमेशने कहा—शीला!

शीलाने कहा—फेल हो जाते तो निकाल देती। पर, वह नौबत ही न आयी। तुम्हारे फेल या पास होनेके पहले मैं ही फेल हो गयी। मैं जांच करने-लायक ही न रही। मैं तुम्हारे प्रेममें पड़ गयी। मेरी ही जांच शुरू हो गयी।

रमेशने कहा—शीला! तुम तो बादमें प्रेममें पड़ीं। मैं तो पहले ही दिन तुम्हारी ओर खिंच गया था। तुमसे बादमें कह भी दिया था।

कखगने पूछा—क्या?

रमेश—इनकी आवाज मेरी मृत पत्नी की आवाजसे एकदम मिलती थी। यही मेरे आकर्षणका कारण था। मुझे अपने उन परिचितका पत्र मिला था पढ़ानेको, तो मैं इनसे यह कहने गया था कि मुझे समय नहीं है, पर इनकी आवाज सुनकर मैं न कह सका। मैंने उसी दिन पढ़ाना शुरू कर दिया। मुझे भय हुआ कि कलसे कोई दूसरा न आ जाय।

कखग, आई० सी० एस० महाशयकी आत्मा उसी वैतरणी-तीरपर

बैठ गयी। रमेश और शीलाने भी बैठना उचित समझा। शीला रमेशके कंधेपर सिर रख कर बैठी।

शीलाने कहा—मैं जांचने लगी। टेबुलपर आमने-सामने हम बैठते थे। मैं कभी-कभी इनके पैरसे अपना पैर छुआ देती थी। ये अपना पैर हटा लेते थे। मैं माफी मांग लेती थी। ये चुप रहते थे।

रमेशने कहा—मेरे खूनकी हरएक बूंद उस समय नाच उठती थी, मैं बोल न पाता था।

शीलाने कहा—मैं कभी-कभी इनसे मजाक करती थी। ये चुप रहते थे।

रमेशने कहा—जवाब देनेकी इच्छा होती थी, पर जीभको दांतोंसे दबा रखता था। सोचता था—धृष्टतासे नाराज होकर यह न कह दो कि कलसे मत आना।

शीला बोली—मैंने इनके बारेमें धीरे-धीरे सब कुछ जान लिया, इन्होंने कभी कुछ न पूछा।

रमेशने कहा—मैं तो सिर्फ तुम्हें रोज देखना चाहता था। मेरे जाननेकी इच्छा को तुम अनावश्यक कुतूहल न समझ लो, यह डर था।

शीलाने कहा—इनकी न जाने किस बातपर मैं बिक गयी। ये पढ़ाते रहते थे, मुझे सुनायी न पड़ता था। किताबमें कहां पढ़ा रहे हैं, यह भी भूल जाती थी। जब ये चुप हो जाते थे तो कहती थी-फिरसे पढ़ाइये। कहां पढ़ा रहे हैं?

रमेशने कहा—मैं समझता था कि मेरा पढ़ाना पसन्द नहीं, यही संकेत कर रही हो।

शीला बोली—जब मैं समझ गयी कि मैं इनसे प्रेम करने लगी हूँ तो अपनेपर बड़ा क्रोध आया। दो तीन दिन इन्हें न आनेको कहा। सोचा था—मनको जांचूंगी, उसे समझा लूंगी। पर सब बेकार हुआ। वे दिन कैसे बीते, कह नहीं सकती। इनका पता भी न मालूम था कि बुलवा ही लेती।

रमेशने कहा—मेरे भी वे युग किसी तरह बीते ही। डरता-डरता गया था। (शीलाकी ओर देखकर) विश्वास था कि तुमने दूसरा आदमी रख ही लिया होगा।

शीला—मुझे डर था कि तुम लौटकर आओगे ही नहीं।

रमेश—उस दिनके बादसे मैं समझ गया था कि तुम मुझसे प्रेम करती हो। तुम बदल गयी थीं।

शीला—हां, मैं मूर्ख हो गयी थी। अपने वशमें न रही थी।

रमेश—लेकिन बीच-बीचमें तुम ऐसी बातें कर देती थीं कि मेरा किला ढह जाता था।

शीला—यह तब होता था जब प्रेम करनेके लिए मैं अपने पर क्रुद्ध होती थी। पर, इससे नुकसान ही होता था। मेरा प्रेम उसके बाद दूना हो जाता था।

कखग—यह पुराण चलता ही रहेगा ?

शीला—तुम तो सुन ही रहे हो, तुम्हारे पुराण तो मैं देखती थी। इसी बीच तुम आये। जिन्हें मैं तुम्हारे पास छोड़ आयी थी, उनसे तुम्हारी खटक गयी थी। तुमने कहा—'हो चुकी पढ़ाई, अब लौट चलो।' मैं अड़ गयी, कहा—'नहीं जाऊँगी।' तुम भी जिद पकड़ गये। उसी दिन रमेशने कहा—आज मैंने एक और ट्यूशन कर लिया है।

मैंने पूछा—कौन है ?

जवाब मिला—एक लड़की है। बी० ए० में पढ़ती है, संगीत सीखेगी।

मेरे दिलपर किसीने मुक्का मार दिया। मुझे लगा कि रमेश मेरे हाथसे निकल गया। रमेशने पूछा—आप क्यों रोती हैं ?—मेरा संयम नष्ट हो गया। रमेशके सीनेमें मुंह छिपाकर कहा—कसम खाकर कहो कि कलसे सिखाने नहीं जाओगे।—रमेश कुछ बोले नहीं, कुछ क्षणों बाद मेरा मुंह उठाया और मेरे अधरोंपर अपने अधर रख दिये।

शीला चुप हुई। रमेशकी आंखें बन्द हो गयी। कखगने एक लम्बी सांस ली।

मैंने छूते ही हाथ खींच लिया। मंजु ! वह शव था। वह कितना शीतल था, मैं कह नहीं सकता।

मंजु चिहुँक पड़ी। मदनने दाहिने हाथसे उसे दबाकर कहा—सोम स्वामीने पुनः सरसों फेंकी। शव इस बार और जोरसे हिला।

सोम स्वामीने कहा—मदन ! मैंने तेरी पत्नी मंजुको जीवन दान किया है। वह क्षयग्रस्त थी, मैंने उसे अच्छा कर दिया। अब उसका जीवन मेरा है।

मंजु बोली—मैं मर जाती, वही अच्छा था।

मदनने कहा—सुनो। सोमस्वामी बोला—

मंजुने भीत होकर पूछा—वही कहा ?

मदनने कहा—हां ! वह तुम्हें चाहता है। उसने कहा कि मुझे एक भैरवीकी आवश्यकता है और मंजुमें भैरवीके सम्पूर्ण शुभ लक्षण हैं।

मंजुने कहा—नहीं, नहीं, नहीं।

मदनने बोला—सोमस्वामीने कहा—उसके जीवनपर मेरा अधिकार है, पर तू उसका पति है। तू स्वेच्छासे मुझे दे दे। अन्यथा तेरे न रहनेपर मैं उसे लूंगा।

मंजु कुछ न बोली।

मदनने कहा—सोमस्वामी बोला—कल या तो तू दे दे या तू न रहेगा।

मंजु कांप पड़ी।

मदनने कहा—क्या करती हो ! नौकर जग पड़ेंगे। शान्त।

मंजुने रोकर कहा—मुझे समाप्त कर दो ! मुझे मार डालो, मुझे..... !

मदनने कहा—छिः मंजु ! सोमस्वामीने कहा—मैं अपना बल तुझे दिखाता हूँ—

सोमस्वामीने फिर सरसों फेंकी। शव इस बार उछल-सा पड़ा। सोमस्वामीने कहा—वीर ! यहां कौन आया है ?

उसने उत्तर दिया—मदनसिंह।

सोमस्वामीने कहा—बैठो और मदनसिंहको देख लो।

शव उठ बैठा। उसने आंखें खोलीं। उसकी प्रभाहीन निर्निमेष दृष्टि मुझपर पड़ने लगी।

सोमस्वामीने पूछा—क्षुधा लगी है?

शव जीभसे अपने ओंठ चाटने लगा।

मंजुने त्रस्त होकर कहा—बस, बस, मैं पागल हो जाऊँगी।

सोमस्वामीने कहा—अभी नहीं। सम्भवतः कल तुम्हें नर-रक्त मिलेगा। अब जाओ।

शव लेट गया। उसकी आंखें बन्द हो गयीं।

सोमस्वामीने मुझसे कहा—देखा! यह वीर है, चिर-तृपित, चिर-बुभुक्षु! कल मंजको दो या इसे अपना रक्त। और सुनो, आज अर्धरात्रिको मैं इसे तुम्हारे घर भेजूंगा। मंजु भी देख ले।

मंजु दृढ़तासे पतिसे लिपट गयी। उसने कहा—मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो, मुझे मार डालो। मैं यहां क्यों आयी थी।

मदनने कहा—अदृष्ट! नहीं तो न वायु-परिवर्तनके लिए यहां आते, न सोमस्वामीसे भेंट होती!

मंजुने कहा—मुझे पहले ही दिन उसकी दृष्टिमें पाप दिखाई पड़ा था—जब उसने स्वतः चिकित्साके लिए कहा था।

दीपकी लौ झलमलाने लगी, पर हवा न थी। सहसा कमरेमें सड़ मांसकी दुर्गंध भर गयी। मदन और मंजु व्याकुल हो उठे। मदनने कहा—मंजु! वीर!

मंजुने घूमकर देखा—मदनकी दृष्टिके सामने, एक मनुष्य खड़ा था। उसकी निर्निमेष दृष्टि मदनपर थी। वह अपने होंठ चाट रहा था। उसकी आंखें जल रही थीं।

मंजुने चीख मारी और पीछे हटकर गिर पड़ी। वीर अदृश्य हो गया। कुछ मिनटोंके बाद कमरेसे वह दुर्गंध भी जाती रही।

कमरेके द्वारपर थाप पड़ी। साथ ही किसीने कहा—रावजी!

मदनने कहा—कौन, संग्रामसिंहजी? कोई बात नहीं। ये स्वप्न देख रही थी।

मंजुने पूछा—अब?

मदन चुप रहा।

मंजुने कहा—चलो मन्दिर चलें। मांके दरवाजे चलो। वहां सोमस्वामी-का जोर न चलेगा।

मदन निराशासे हँसा। पर मंजुकी जिदसे वह उठा। कमरेका द्वार खोलकर ये निकले। बाहर, दालानके अन्तमें, हाथोंमें तलवार लिए कोई ६० वर्षोंका एक वृद्ध बैठा था। वह इन्हें देखकर उठा।

मदनने कहा—संग्रामसिंहजी! तुम!

संग्रामने कहा—हां, नींद नहीं आती थी।

मदन बोला—हम देवीके मन्दिर जा रहे हैं।

संग्राम—इस समय?

मदनने मंजुकी ओर देखा।

मंजुने कहा—हम थोड़ी देरमें लौट आवेंगे।

संग्रामने बढ़कर दरवाजा खोला और कहा—पांच मिनट ठहरो। मैं भी आया, रणधीरको जगा दूं!

मदनने कहा—नहीं, तुम रहो।

संग्रामने कहा—तो तलवार ले लो। फिर मैं निश्चिन्त हो जाऊंगा।

मदनने तलवार ले ली और बाहर निकला। मंजु पीछे थी।

उनके जाते ही संग्राम दौड़कर एक कमरेमें गया, खूंटीसे एक तलवार ली और रणधीरको पैरसे हिलाया। रणधीर उठ बैठा। संग्रामने कहा—मैं बाहर जा रहा हूं। दरवाजा बन्द करके यहीं बैठ।

रणधीरने सिरहानेसे तलवार उठाकर कहा—हुकुम!

संग्राम बाहर निकला। रणवीरने द्वार बन्द कर लिया और वहीं बैठ गया।

संग्राम पंजोंके बल दौड़ा। मदन और मंजु मन्दिरकी सीढ़ियां चढ़ रहे थे। वे भगवतीके द्वारपर गये, देहलीपर माथा टेका और बैठ गये। संग्रामने दूरसे देखा और वह सीढ़ियोंके नीचे, अन्धकारमें बैठ गया। उसने मियानसे तलवार निकाल ली।

थोड़ी देर बाद संग्राम सिंहने एक अद्‌भुत दृश्य देखा। पश्चिमकी ओरसे एक सिंह आया। वह एकदम श्वेत था और कोई १०-१२ हाथका था। उसपर एक व्यक्ति बैठा था। उसकी सफेद दाढ़ी नाभितक लटक रही थी। वह बहुत दीर्घाकार था। सिंह सीढ़ियां चढ़कर रुका, उसपर बैठा व्यक्ति उतर पड़ा। सिंह वहीं बैठ गया। वह व्यक्ति कौपीन पहने था, उसके मुखमण्डलसे आभा छिटक रही थी। वह मन्दिरके द्वारकी ओर चला। संग्रामसिंह धीरेसे घूमकर मदन और मंजुकी पीठकी ओर, अँधेरेमें खड़ा हो गया। वह निर्निमेष दृष्टिसे उस व्यक्तिको देख रहा था।

वह व्यक्ति मन्दिरके द्वारपर मदन और मंजुको देखकर ठिठका। मंजु चिहुँककर खड़ी हो गयी—मदन भी।

वह व्यक्ति इनके पास आया। उसने मंजुको ध्यानसे देखा और कहा—भैरवी!

मंजु घबराकर दो पग पीछे हट गयी, मदन आगे बढ़ आया। उसने तलवारकी मूठ कसकर पकड़ी और कहा—सोमस्वामी! तुम इस वेषमें! पर मैं तुम्हें काटकर फेंक देता हूं!

मदनने उस व्यक्तिपर तौलकर वार किया। उसने हाथ उठाया और मदनका हाथ जहांका तहां रह गया।

उस व्यक्तिने कहा—शांत! सोमस्वामी कौन?

मदनने कहा—मेरा सशरीर दुर्भाग्य!

उस व्यक्तिने कहा—तलवार दूर रखो। तुम कौन हो?

मदनने कहा—क्षत्रिय ! यह मेरी पत्नी।

उस व्यक्तिने कहा—पत्नी ! पर, इसमें तो भैरवीके सम्पूर्ण लक्षण हैं। तलवार उठानेके पहले मैंने तुम्हें साधक समझा था।

मदनने कहा—यही हमारे दुर्भाग्यका कारण है। इसीलिये सोमस्वामी पीछे पड़ा है।

उस व्यक्तिने पूछा—क्या चाहता है ?–मदनने सम्पूर्ण कथा सुनायी। मंजु सिसकने लगी।

उस व्यक्तिने सब सुनकर कुछ देर आंखें बन्द करके विचार किया, तब कहा—तुम वीराचारीके फन्देमें हो। पर जितनी बातें तुमने कहीं सब सत्य हैं ?

मदनने कहा—अक्षरशः।

वह व्यक्ति बोला—उसने वीरको तुम्हारे घर भेजा ! इतनी सिद्धिके बाद उसे भैरवीकी आवश्यकता क्यों ? अवश्य ही उसके मनमें कलुष है।

मदनने कहा—मंजु यही कहती है।

उस व्यक्तिने कहा—ठीक कहती है। अच्छा !

वह व्यक्ति आगे बढ़ा। उसने घुटने मोड़कर मन्दिरकी देहलीपर सिर रखा और उसी अवस्थामें ५-७ मिनट बैठा रहा। तब वह उठा, उसने कहा—पुत्री ! तुम आश्वस्त होओ। उसकी अभिलाषा पूर्ण न होगी। उसके दिन पूरे हो गये।

मंजु उस व्यक्तिके पैरोंपर गिर पड़ी। उसने मंजुके सिरपर हाथ रखा और कहा—पुत्री ! मैं भी वीराचारी हूं ! मेरे पास भी भैरवी थी। पर मैंने आत्मोन्नतिके लिए यह मार्ग ग्रहण किया और भगवतीकी कृपासे मेरा संयम ठीक रहा। सोमस्वामी कुमार्गपर दूर तक चला गया है, यदि वह न माना तो फिर भगवतीकी इच्छा !

मंजु उठकर खड़ी हो गयी। उस व्यक्तिने पूछा—सोमस्वामीने शपथ-के साथ तुम्हें एक कविता [illegible] गानेको दी थी ?

मंजुने कहा—हां।

उस व्यक्तिने कहा—वह तुम्हारे उदरमें है। थूको तो!

मंजुने थूका। झटकेमें एक इलायची मुंहसे निकली, पर वह जमीनपर न गिरी, हवामें ही रही। उस व्यक्तिने उसे पकड़ लिया और अपने पैरके नीचे रखकर उसे मल दिया।

उसने तीन वार मंजुपर फूंक मारी और तीन ही वार मदनपर। तव कहा—पुत्री! यह इलायची अभिमंत्रित थी। इसीके वलपर वह तुम्हें अपने पास वुला लेता! पुत्र! अव तुम दोनों कलतकके लिए सुरक्षित हो। कल मैं ठीक समयपर पहुँच जाऊँगा। तुम लोग मेरे जानेके तीन मिनट वाद घर चले जाना।

वह व्यक्ति जव सिंहपर वैठकर चला गया, तव संग्रामसिंह घरकी ओर दौड़ा।

मंजु मन्दिरकी देहलीको आसुओंसे भिगोने लगी।

\+ ÷ + +

दूसरे दिन रातको दस वजे मदनने कहा—मंजु, इस कमरेमें तो दम-सा घुट रहा है। चलो, छतपर चलें।

मंजुने पतिका हाथ अपने हाथोंमें ले कर पूछा—तुम्हारा शरीर तो ठीक है न!

मदन—हां, ठीक है। पर दिनभर मुझे कोई खींचता रहा।

मंजु—महात्माजीकी कृपाके कारण ही तुम गये नहीं।

मदन और मंजु छतपर आकर एक दरीपर वैठे। मंजुकी आशंका प्रति क्षण वढ़ रही थी।

वह वोली—अभी महात्माजी नहीं आये। ईश्वर जाने, आज क्या होगा।

उनके विलकुल पाससे आवाज आयी—मैं यहीं हूँ पुत्री! तुम चिंता न करो!

दोनों श्रोता चौंक पड़े। दोनोंने भूमिपर सिर रखकर प्रणाम किया। मंजुका हृदय हलका हो गया।

फिर शब्द हुआ—थोड़ा मद्य, मांस और लाल चन्दन मँगवा लो। एक लोटा जल भी।

संग्रामसिंह इन लोगोंसे थोड़ी ही दूर, सीढ़ियोंपर, अंधकारमें बैठा था। वह दांतपर दांत रखकर नीचे उतर गया। तभी मदनने आवाज दी—संग्रामसिंहजी!

संग्रामने गला साफकर आवाज दी—हुकुम। आया।

थोड़ी देर बाद संग्रामने सब चीजें लाकर रख दीं।

बारह बजा, महात्माजी उनके सामने खड़े हो गये। उन्होंने उन्हें बैठनेका आदेश दिया और स्वयं भी भूमिपर बैठ गये।

वे बोले—सोमस्वामी वीरको जगा रहा है। मैं गृहको अभिमन्त्रित कर दूं। इससे तुम निश्चिन्त हो जाओगे। वीर इस गृहमें प्रवेश न कर सकेगा।

महात्माजीने चुल्लूमें जल लिया, उसे बायें हाथसे ढँका और उनके अधर हिलने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने वह जल चारों दिशाओंमें छिड़क दिया।

तब उन्होंने कहा—दीपक बुझा दो। तभी तुम सब कुछ स्पष्ट देख सकोगे। और मदनने [illegible] बुझा।

दोनों श्रोता सिहर उठे। मंजुके [illegible]।

महात्माजी बोले—सोमस्वामी भी साथमें है। अन्यथा वीर पल भरमें ही आ जाता। पर देर न लगेगी। सोमस्वामी बोल रहा है। मैं उसकी पद-ध्वनि सुन रहा हूँ।

श्रोता उत्सुक बैठे रहे।

थोड़ी देर बाद महात्माजीने कहा—वे लोग आ गये। [illegible]। [illegible]।

पलभरमें मदन और मंजुने देखा—छतसे सटी एक विराट् काया खड़ी है। वह पुरुष कोई ४० हाथ ऊँचा और ८ हाथ चौड़ा था। उसकी आंखोंके स्थानमें अंगार थे। वे नेत्र मदनपर स्थिर थे। मंजु मदनसे एकदम सट गयी, मदनका हाथ तलवारपर गया, संग्राम अन्तिम सीढ़ीपर खड़ा हो गया। उसके हाथमें नंगी तलवार थी।

वीरके मुंहसे गंभीर गर्जन-सा निकलने लगा, उसके सिरके केश खड़े हो गये। वह कांपने लगा!

महात्माजी छतके कोनेपर जा बैठे। उन्होंने कहा—सोमस्वामी! मैंने कल तुझे कितना समझाया था, तूने मान भी लिया था; पर आज वचन-भंग किया। अब भी मान जा!

कोई उत्तर नहीं।

महात्माजी बोले—तेरी शक्ति तुच्छ है। तेरा वीर इस गृहमें प्रवेश नहीं कर सकता। तू अब भी मान जा। वीरको अपना दक्षिण हस्त काटकर दे दे, वह लौट जाय।

पूर्ववत् शान्ति!

महात्माजीने कहा—वीर आज सम्पूर्ण शक्तिमें है। उसे बलि चाहिये ही। वह आज रिक्त-हस्त न लौटेगा। शीघ्रता कर, हाथ काट!

एक भयंकर हँसी उत्तरमें आयी।

महात्माजीने कहा—मैं वीरको एक बार पीछे हटाता हूँ। उसके पुनः लौटनेतक तू निश्चय कर ले।

महात्माजीने एक चुल्लू जल वीरपर फेंका। वीर ऐसे पीछे भागा, जैसे उसपर अंगार-वृष्टि हुई हो। वह १० मिनटमें लौट आया। उसके नेत्रोंसे जैसे स्फुलिंग निकल रहे थे, वह दंतघर्षण कर रहा था, उसका गर्जन इस बार अधिक गम्भीर था।

महात्माजीने कहा—सोमस्वामी! वीर क्रुद्ध है। अब तुझे दोनों हाथ देने होंगे। बोल! क्या कहता है?

नीचेसे पुनः घृणासूचक हास्य और गालियां सुन पड़ीं।

महात्माजीने एक चुल्लू जल नीचे फेंका और कहा—सोमस्वामी ! अब तू एक पैर भी नहीं हिल सकता। बोल, दोनों हाथ देता है ?

उत्तरमें गालियोंकी बौछार सुन पड़ी।

महात्माजी बोले—वीर ! अब मेरा दोष नहीं। तेरा साधक पापात्मा है। तुझे रक्त चाहिये न ! अपने साधकका ही ले !

विद्युद्वेगसे वीर अपने साधक सोमस्वामीपर झुक पड़ा। एक लम्बा आर्त्तनाद सुन पड़ा। मदन और मंजुका हृत्स्पन्दन कुछ क्षणोंको रुक गया।

वीर पुनः खड़ा हुआ। वह ओंठ चाट रहा था। महात्माजीने मांस उसके हाथोंपर छोड़ दिया। वीरने उसे मुंहमें रखा और मुंह खोले ही रहा। महात्माजीने मद्यकी धारा उसके मुंहमें छोड़ी। पीकर वीर पुनः ओंठ चाटने लगा। उसने कहा—प्यास !

महात्माजीने मदनकी तलवार उठा ली, अपनी एक उँगली चीर दी और उसे वीरके मुख-गह्वरपर ऊँचा किया। उँगलीमेंसे रक्त-बिन्दु उसके मुंहमें टपकने लगे।............

१०-१५ बिन्दु टपकनेके बाद वीरने मुख बन्द कर लिया। उसके मुख-पर शान्ति देख पड़ी, उसके नेत्र प्रभाहीन हो गये। दूसरे क्षण वह अदृश्य हो गया।

महात्माजी घूमे। उन्होंने हाथ धोया और एक चुल्लू जल लेकर कहा—पुत्री ! मुंह खोल ! यह जल पी ले ! इससे अब किसी तान्त्रिकका तुझपर जोर न चलेगा। मदन ! संग्रामसिंह तुम्हारा अनुपम सेवक है। वह कल तुम्हारे साथ मन्दिरतक गया था ! आज भी वह सीढ़ीपर खड़ा है।

संग्रामकी तन्द्रा टूटी। वह दबे पांवों नीचे उतरने लगा। मदन और मंजुने घूमकर उधर देखा। संग्राम दिखाई न पड़ा।

मदनने कहा—महात्माजी ! उन्होंने मुझे गोदमें खिलाया है, मुझे असि-शिक्षा दी है।

मदन और मंजु जब उधर घूमे तो महात्माजी न थे।

\+ + + +

प्रातः काल विन्ध्याचलमें सोमस्वामीकी ही चर्चा थी।

एक व्यक्तिने कहा—यह महात्माजी यहां क्यों आये और मरे कैसे?

दूसरेने कहा—शरीरपर आघातका कहीं चिह्न नहीं है।

तीसरेने कहा—शरीर ऊपरकी ओर खिंचा हुआ है, जीभ और आंखें बाहर निकल आयी हैं। .

चौथेने कहा—जीभ हाथ भरसे कम क्या होगी! शरीरमें इतनी बड़ी जीभ होती है?

पांचवेंने कहा—एक बात और है। शरीरमें एक बूंद भी खून नहीं है। जैसे किसीने चूस लिया हो!

—०—

शरबती

शरबतीसे दो साल बड़ा, १९ वर्षका भाई सुरेन्द्र था। रातको एकाएक उसकी नींद खुल गयी। रजाईमें लिपटा वह कुछ देर पड़ा रहा। फिर उठ बैठा। बगल हीमें खाटोंपर उसका छोटा भाई और पिता सोये थे। उसने सिरहानेसे टटोलकर छोटी-सी घड़ी उठायी। रेडियम लगी सुइयोंने तीन बजकर सत्रह मिनट सूचित किया।

वह खाटसे उठा, दबे पांवों बाहर आया और बगलके कमरेके दरवाजे-पर आया। भीतर अंधेरा था। वह पुनः अपनी खाटतक आया, सिरहानेसे टार्च ली और फिर बगलके कमरेके द्वारपर जा खड़ा हुआ, उसने टार्च सीधी की और बटन दबाया। प्रकाशमें देखा—एक खाटपर मां सोई है, एक खाट खाली है।

वह कमरेके भीतर गया। चारों ओर देखा। फिर बाहर निकल आया। उसके माथेपर पसीनेकी बूंदें निकल आयीं। सांस गरम हो गयी और रुक-रुक कर आने लगी। उसका शरीर कड़ा हो गया, आंखें जल उठीं।

वह नीचे उतरा—पैखानेकी ओर गया, वह खाली था। वह सदर दरवाजेकी ओर आया। भीतरसे उसकी सिकड़ी खुली थी, हुड़का हटा हुआ था, भारी दरवाजा चपकाया हुआ था। वह दरवाजेपर हाथ रखकर कुछ देर खड़ा रहा तब सिकड़ी पर हाथ रखा, दरवाजा खोलनेका विचार किया, फिर कान लगाकर बाहरकी आहट ली और सिकड़ी और हुड़का लगाकर दबे पांवों ही आकर खाटपर लेट रहा। रजाई नहीं ओढ़ी। उसे सर्दीका अनुभव नहीं हो रहा था।

एक घण्टा ४३ मिनट बीते। भीतर कुछ आवाज हुई। सुरेन्द्रने रजाई अपने ऊपर खींच ली।

थोड़ी देर बाद कोई भीतर आया। वह सुरेन्द्रके पिता की खाटतक गया। दो तीन सेकेण्ड बाद सुरेन्द्रके पिताने कहा—एँ, और उठ बैठे।

सुरेन्द्रकी मां ने कहा—मै हूँ। धीमे बोलो।

उन्होंने पूछा—क्या है ?

पत्नीने रुककर कहा—शरबती कहां है ?

उन्होंने कहा—शरबती ! क्यों ? मैं क्या जानूं ! वहां नही है ?

नहीं।

पैखाने गयी होगी।

नहीं।

ऊपर होगी।

नहीं।

नीचे ?

नहीं।

सुरेन्द्रके पिता खाटसे उठ खड़े हुए। पत्नीने कहा—मोहनके साथ उसे कई बार इशारे करते देखा, समझाया, पर यहांतक नौबत आ जायगी, कौन जानता था।

पति धप्‌से खाटपर बैठ गये—सामने वाला मोहन !

हां, वही।

तो ?

उसी ओर गयी होगी।

देखता हूँ।

लेकिन दरवाजा भीतरसे बन्द है।

अब सुरेन्द्र उठ बैठा, बोला—मैंने बन्द किया है।

मां-बाप चौंक पड़े। कुछ देर निःस्तब्धता रही।

बापने पूछा—जाते देखा था ?

सुरेन्द्र भयंकर सूखी हंसी हंसा।

मां सिहर उठी।

पिताने कहा—दरवाजा खोल दो।

छः बजनेमें कुछ ही देर थी। तीनों चुप बैठे थ। नीचे दरवाजा धीरेसे खुला, फिर बन्द हुआ। जरा देरमें इस कमरेके सामनेसे एक छाया आगे बढ़ी। बापने पुकारा—शरबती!

छाया निश्चल हो गयी।

शरबती!

शरबती!

मांने लालटेन जलायी। बाप बेटीको घसीटकर भीतर ले आया। बेटीका मुंह सूखा हुआ था, बड़ी-बड़ी आंखोंमें त्रास भरा था, शरीर कांप रहा था। वह सिर नीचा किये खड़ी रही।

कोई कुछ बोला नहीं। बाप बेटीसे भी ज्यादा कांपने लगा। मांके आंसू गिर रहे थे। सुरेन्द्रकी आंखें जल रही थी।

बापने कहा—अभागिन! दो ही महीने बाद तो ब्याह होगा। इतने दिनों इज्जतसे नहीं बैठा गया।

बापने फिर कहा—अब भी सम्भल जाय तब न!

शरबतीने सिर और नीचा करके कहा—मैं तो उसीसे ब्याह करूँगी, दूसरेसे नहीं।

बापने बल खाकर कहा—सती-सावित्री कहीं की!

सुरेन्द्रने कहा—ठीक है। शादी उसीसे होगी।

बापने शंकाकी—वह हमारी जातके नहीं।

सुरेन्द्रने कहा—जात बाकी है?

बाप बोले—हमारी तो नहीं, लेकिन उनकी?

सुरेन्द्रने निश्चिन्त भावसे कहा—देखा जायगा। नहीं ही माने तो इन दोनोंकी गर्दन तो उतार ही लूंगा। शादी दूसरेसे नहीं होगी।

मा फिर सिहर उठी।

:o: :o: :o: :o: :o:

दो घण्टे और बीत चुके थे। सुरेन्द्रके पिता निराशा और चिन्ताकी मूर्त्ति बने घरमें आये। सर्वत्र ऐसी शान्ति थी जैसे घरमें कोई मर गया हो और सब लोग श्मशान चले गय हों।

वे ऊपर आये। सामनेके कमरेमें सब लोग चुपचाप बैठे थे। उन्होंने कहा—लालाजी नहीं माने। कहने लगे—हमने मोहनकी शादी ठीक कर ली है, हम परजातमें शादी नहीं करेंगे।

सुरेन्द्रकी गम्भीर और जलती आंखें पिताकी आंखोंसे जा मिलीं।

पिताने घूट-सा गलेके नीचे उतारकर कहा—मैंने सब बता दिया। कहने लगे—हमारे लड़केका क्या कसूर? वह तो तुम्हारे. घरमें नहीं घुसा था?

सुरेन्द्रने टेढ़ी कटारको जांघपर फैले चमड़ेके टुकड़ेपर टेते हुए ही एक बार शरबतीकी ओर देखा। उसके मुंहपर मुर्दनी छाई हुई थी, इसकी आंखें धरतीमें. गड़ी हुई थीं।

माने कहा—एक बार मोहनसे.........

बापने क्रुद्ध स्वरमें उत्तर दिया—मैं नहीं कहूँगा उससे।

मांने बेटेकी ओर देखा। उसने भी मां की ओर देखा, फिर कटार तेज करनेमें दत्तचित्त हो गया।

मांने जैसे अपने ही से कहा—तो मैं देखूं।

सुरेन्द्रने अत्यन्त शान्त स्वरमें कहा—नहीं। उससे मिलने मैं जा रहा हूँ।

एकाएक शरबती उठी और बाहर निकल गयी।

मोहनके पिता आंगनमें दतौन कर रहे थे। शरबती उन्हींके पास जाकर खड़ी हो गयी। लालाजीका एक बार हाथ कांप गया। पूछा—क्या है शरबती?

वह कुछ बोल न सकी। आंसू बहने लगे।

लालाजीने प्रश्न दुहराया।

शरबतीने प्रश्न किया—आपने बाबूजीसे क्या कहा?

लालाजीने कहा—ओ, वह बात! मैं नहीं कर सकता।

क्यों?

तुम यह सब क्या समझो। तुम्हारे बाबूजीको सब समझा दिया है।

मुझे भी समझा दीजिये।

तुम हमारी जातकी नहीं हो।

लेकिन।

हां, तुम्हारी गलती थी।

आपके बेटेकी नहीं?

लालाजीने क्षण भर उसकी ओर देखा, फिर बोले—लड़कोंकी गलती-पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता।

शरबतीकी आंखें जल उठीं, पूछा—चाहे किसी लड़कीकी जिन्दगी खराब हो जाय?

इतनेमें मोहनकी मां और उसकी बहन भी वहां आकर खड़ी हो गयीं।

लालाजीने क्रोधसे कहा—किसने कहा था तुमसे जिन्दगी खराब करनेको?

मेरे अभाग्यने, तुम्हारे बेटेने।

मोहन?

हां, उसीने।

शरबतीने फिर कहा—हां, उसीने कहा था शादी करनेको।

वह कौन होता है शादी करनेवाला?

वह कौन होता था मुझे बहकाने वाला?

तुमने मुझसे पूछकर..........

आपके बेटेने आपसे पूछ लिया था?

तुम बहुत आगे बढ़ रही हो।

पीछे हटनेका रास्ता नहीं है।

फिर शरबतीने मोहनकी मां और बहनकी ओर देखा, कहा—इन्होंने क्यों न मना कर दिया था ? इन्हें तो मालूम था !

लालाजी तड़प कर उठ खड़े हुए। उन लोगों से पूछा—यह क्या कह रही है ?

मोहनकी बहनने कहा—कुछ मालूम जरूर था। सोचा था, दूर-दूरकी बात है। दो महीनों बाद यह कहां, मोहन कहां।

मोहनकी मांने शरबतीके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—बेटी, घर जाओ। जो हुआ सो हुआ, किसीको मालूम थोड़े ही है। दो महीने बाद तुम्हारी शादी हो जायगी, किस्सा खतम।

शरबतीने ऐंठ कर कहा—किस्सा तो शुरु हुआ है।

मांने कहा—तुम खुद बदनामी करानेपर तुली हो तो क्या किया जाय ?

शरबती बोली—मैं अब दूसरेका हाथ नहीं पकड़ सकती, इसमें चाहे बदनामी हो, चाहे जो हो।

मांने कहा—तुम खुद न ढोल पीटो तो, अबतक तो किसीको कुछ पता ही नहीं है।

शरबतीने होंठ चबाकर कहा—मुझे तो मालूम है ! यह जला तन-मन लेकर अब मैं किसके पास जाऊँ ? और क्यों जाऊँ ? जिसने हाथ पकड़ा, वह निबाहे।

इतनेमें मोहन किसी कोनेसे निकल आया। आते ही शरबतीसे कहा—सुनो, मैं नहीं करूँगा तुमसे शादी।

शरबतीके नीचेसे जमीन खिसक गयी।

लालाजीके ये शब्द जैसे बहुत दूरसे उसके कानोंसे दिल तक गले शीशेकी तरह उतर गये—सुन लिया ! बड़ा जोर लेकर आयी थीं मोहनका !

शरबती खम्भेका सहारा लेकर खड़ी हो गयी, फिर आगे बढ़कर पूछा —क्यों नहीं करोगे ?

मेरा मन।

आखिर?

तुम मुझे पसन्द नही हो।

आजतक तो मुझ जैसी कोई नही थी! दो चार घण्टोंमे क्या हो गया?

मोहनने कहा—वेहया!

जवाव मिला—ह्यादार! शादीका वादा करके, मुझे धूलमें मिलाया, अव मन वदल गया! रोजगार अच्छा है! लेकिन मेरा मन नहीं बदला है। मं शादी करके रहूँगी।

करले इसी खम्भेसे।

तुमसे करूँगी तुमसे! झख मारोगे और करोगे।

मेरी वला!

गलेके नीचेसे चोलीमे अंगूठा और दो उगलिया डालकर शरवतीने झटकेसे कुछ कागज निकाले, उन्हे मोहनको दिखाकर फिर यथास्थान रख दिया। तव कहा—ये तुम्हारे खत है, वादोसे भरे, तारीफोसे भरे, आंसुओ और कलेजेके खूनसे रगे! इनका क्या करोगे?

मोहनने कहा—इसका जवाव अदालतमे मिलेगा।

शरवतीने कहा—मेरी अदालत मेरे मोहल्लेके लोग है, सारा शहर है।

उसने आगे वढकर मोहनका हाथ कसकर पकड लिया और खींचते हुए कहा—वाहर निकलो। अभी अदालत हुई जाती है।

मोहनकी वहनने आगे वढकर शरवतीका हाथ पकड़ लिया, उसके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—फैसला हो गया। तू जीत गयी भाभी!

शरवती उसके कन्धेमे मुह छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी। लालाजी धीरेसे वहांसे खिसक गये, दलील उनके हाथ ही में थी।

:o: :o: :o: :o: :o:

एक सप्ताह बाद!

मोहल्लेवालोंको एक दिन अकस्मात् शरवती और मोहनके पिताने साथ-साथ जाकर आमन्त्रित किया—शामको शादी है, भोजन और

विवाहमें सम्मिलित होकर कृतार्थ करें। जी? सामने-सामने मकान ठहरे, बरात निकालनेकी क्या जरूरत! जी हां, ७ बजे।

मोहल्लेमें आश्चर्यकी लहर दौड़ गयी। देवियोंमें वार्तालाप प्रारम्भ हुई।

अजी, मैं तो बरस रोजसे जानू।

आजकलके लड़के लड़कियोंके पीछे मां-बापकी मिट्टी खराब है।

ऐसोंका गला जनमते ही टीप दे।

बड़ी छतीसी लड़की है।

मां बापकी क्या हियेकी फूट गयी थीं?

दो मन राजी तो क्या करे काजी।

बस बात तो ये है।

गजब हो गया।

लालाजीने मान कैसे लिया?

कौन जाने लालाजीने माना कि शरबतीके बापने।

हुँह! हाथी-सी लड़की रख छोड़ी थी, आखिर होता क्या?

कहो जो भी, जोड़ी अच्छी है।

जाने भी दो, कहांकी इन्दरकी परी है।

दिल लगा चुड़ैलसे तो परी क्या चीज है।

कान काट लिये इस छोकरीने तो!

चार ही बजेसे देवियोंने एक-एक दो-दो करके मोहनके यहां पधारना शुरू किया। एक देवीजीने मोहनकी बहनसे बड़े कौशल और व्यंगसे कहा—तो आ गयी शरबती तुम्हारे यहां।

मोहनकी बहनने उतने ही कौशलसे, पर अत्यन्त नम्रता और भोलेपनसे उत्तर दिया। उसने देवीजीके चरण छुए और कहा—तुम्हारा आशीर्वाद है जीजी! और भैयाका भाग! शरबती जैसी लड़की क्या रोज पैदा होती है!

सब वक्रता समाप्त हो गयी। आगे कुछ कहनेकी राह ही न रही। हताश होकर देवियां उठीं, बोलीं—चलें शरबतीके यहां, वहां भी तो जाना है।

मोहनकी बहनने हँसकर कहा—न जाओ तो भी क्या! यहां बैठी रहो तो वे लोग बुरा थोड़े ही मानेंगे।

पुरोहितजीने मोहनके हाथोंपर शरबतीके हाथ रखे और मन्त्र पढ़ने लगे। शरबतीकी माँने देखा—मोहनने जरा हाथ नीचे कर लिया, शरबतीके हाथ ढीले होकर झुक गये।

शादीके बाद देवियां घर लौटीं। रास्तेमें आलोचना शुरू हुई—

मां रे मां! कैसी लड़की है! मोहन माला पहनानेमें लजा रहा था। सो माला समेत उसके हाथ अपने गलेमें डाल लिये।

तुम तो बढ़ाकर कहोगी! हां, माला जरूर गलेमें डलवा ली थी।

अच्छा भई! यही सही! और दीदे निकालके कैसी ताक रही थी।

तो किसी दूसरेका मरद था!

तुमने भी ताका होगा?

इतना नहीं।

तो तुम क्या कम हो!

लो, अब मुझसे उलझ पड़ीं।

अच्छा ये लो, अब नहीं बोलनेकी। खुश हो अब तो!!

चार दिनों बाद

ननद शरबतीको सजा रही थी। सजा चुकनेके बाद उसने शरबतीको सामने खड़ा करके देखा, कहा—इनाम दो।

शरबतीने कहा—मुझे ही ले लो।

ननदने उसका माथा चूमकर कहा—सबसे पहले मैंने ही तो लिया था तुम्हें।

शरबतीकी आंखें छलछला आयीं। ननदने कहा—देख; मेरा गुस्सा खराब न कर।

फिर कहा—तुम तो एक साड़ीमें ही अच्छी लगती हो। बेकार मेहनत की मैंने। बोझ लाद दिया तुमपर।

ननदने शरबतीका हाथ पकड़ा। उसे आगे बढ़ाते हुए कहा—भैयाका कसूर माफ कर दो। कोई दिल दुखानेवाली बात न कहना। हमारा जनम तो सहनेके लिए होता है।

मोहनके कमरेके दरवाजेतक लाकर ननदने लौटते हुए कहा—याद रखना।

ननदके लौटते ही शरबतीकी आंखें जल उठीं। वह भीतर घुसी। मोहन पलंगपर बैठा था। शरबती सामने जाकर खड़ी हो गयी।

कुछ देर बाद मोहनने विद्रूप-भरे स्वरमें कहा—इस आडम्बरकी क्या जरूरत थी?

शरबतीने वैसे ही स्वरमें कहा—दुनियाको पता न था।

क्या?

यही कि मैं तुम्हारे पास आती थी।

तुम्हें तो पता था!

तुम तो पढ़े-लिखे हो। गांधर्व विवाहके बाद भी अग्निकी साक्षी जरूरी है, यह जानते होगे।

तुमने पहले मुझसे क्यों नहीं कहा? बाबूजीसे क्यों भिड़ गयीं?

मैं तुम्हारे ही पास आ रही थी। बीचमें वे मिल गये। मेरा तो दिमाग ठिकाने न था, उन्हींसे कह बैठी। पर तुमने नहीं क्यों किया था?

तुम बाबूजीकी बेइज्जतीपर उतारू हो गयी थीं।

उन्होंने और तुम्हारी माताजीने तो मुझे इज्जतसे ढक दिया था न!

उन्होंने तुम्हारी क्या बेइज्जती की?

उन्होंने छिपे तौरपर यही तो कहा था कि तुम रण्डी हो, हमारे बेटेके पास आयी तो आयी, शादीका नाम लेनेका अधिकार कहां है? और रण्डी भी कैसी? जिसे उनके बेटेको एक पैसा भी न देना पड़ा, जिसके लिए बदनामी भी न उठानी पड़ी।

बेशरम!

तुम्हारे पास आती रहती, चुपचाप दूसरेसे शादी कर लेती, तब हयादार रहती न ?

चुप !

ज्यादा शरीफ तब होती कि शादीके बाद भी..........

चुप रहो, कह रहा हूं न।

जी, अब तो मेरी बातें भी बोझ हो गयी हैं।

जाओ, सो रहो।

ये ११ दिन कैसे कटे, यह तो बता दो ! पहले तो एक-एक सेकेंड नहीं कटता था, रात भर नींद न आती थी, खाना नहीं रुचता था, दिन रात खिड़की पर डटे रहते थे, खूनके आंसू बहते थे,

मैं हाथ जोड़ता हूं, सो जाओ।

एक बार देखनेको तरसते थे, एक बात करनेको जीते थे, एक इशारेपर मरनेको तैयार थे, घर-बार छोड़नेको उतारू थे, मेरे दांतोंका काटा एक पान पानेके लिए.........

मोहनने मुंह घुमा लिया।

शादी करनेको तैयार थे, मां बापकी परवाह न थी; और जब मैंने वही बात लालाजीसे कही तो उनकी बेइज्जती हो गयी !

बात कायदेसे कही जाती है।

मेरी हालत क्या थी उस वक्त, मालूम है ? भैया कटार लिए बैठे थे, तुम्हारे पास आनेवाले थे। मेरी जान निकल गयी। सोचा, न जाने क्या हो ! बस, भागी आयी। रास्तेमें लालाजी बैठे थे। यह तो तुमसे न हुआ कि आकर मेरी बगलमें खड़े हो जाते, मुंहों भी एक बार मेरी ओर हो जाते ! उल्टे आकर कहा—हम नहीं करेंगे।

तो कर ही लेनेसे क्या मोहन तुम्हें मिल गया ?

लोक-दिखावा तो मिल गया। और मुझे ही तुम्हारी जरूरत कब है ? मुंह देखूं !

मजेमें देख लो। निर्दयी ! एक क्षणको भी मेरा दिल न पहचाना !

तुम्हारी सूरतसे नफरत है।

तुम्हारी छायासे नफरत है। तुम्हारे लिए मैंने क्या नहीं किया ? क्या बचाकर रखा ? क्या छिपाया ? और तुमने एक सेकेण्डमें मुझे चकनाचूर कर दिया !

बड़ी नाजुक हो न !

तुम क्या जानो ! मेरा दिल तुम्हारे पास होता तो समझते। लेकिन अच्छा किया। मुझे भी तुमसे नफरत हो गयी। इसीसे अबतक जी रही हूँ। दूसरे, तुमसे एक बार बातें भी करनी थीं।

हो गयीं न अब तो।

तुम ये बातें यही समझके न कर रहे हो कि तुम पुरुष हो ? समझते होगे कि अब इसका गुजारा कहां ! क्यों ?

यही सही।

यही है ही ! लेकिन तुम्हारा ख्याल गलत है। मरनेवालेको इन बातोंसे झुका नहीं सकते। अब देख समझकर दूसरी लाना, अपने मन की।

तो क्या समझती हो मुझे औरतोंकी कमी है ?

तो क्या किसी औरतको मर्दोंकी कमी है ? शरबती है तो मोहनोंकी क्या कमी ?

मैं कर सकता हूँ।

मैं भी कर सकती हूँ। अबसे पहले क्या दिया है कि छीन लोगे ? मैंने ही तुम्हें साढ़े छः आने दिये हैं। हां, तुम्हारा पाउडर और तेल थोड़ा ले गयी थी। इसलिए कि तुम्हारा था, मुझे वही अच्छा लगता था। उफ ! बेईमान दिल ! आज भी तू पूरा-पूरा नहीं बदला ! पर, तुझे कुचल कर ही रहूँगी।

मोहन मौन रहा।

शरबतीने फिर कहना शुरू किया—यह लो पांच रुपये ! तुम्हारे

पाउडरका दाम, तेलका दाम! अब मेरा ही कर्ज है तुमपर। मेरा दिल तोड़ा है, उसका दाम कुछ दे सकते हो? मेरी जान जायगी, उसका।

मोहनने कहा—मरनेवाला धमकी नहीं देता।

सच ही तो है। पर मैं तो बात कह रही हूँ, धमकी तो दे नहीं रही हूँ।

और मेरी जिन्दगीपर जो बोझ लादा है?

कहा तो, बोझ नहीं रहेगा। एकदम हल्के हो रहोगे।

मरना क्यों चाहती हो?

जीनेको रहा क्या? तुमने नफरत बसाली दिलमें, मुझे वहांसे निकाल बाहर किया! मैं भी तुमसे घृणा करने लगी हूँ। मैं न करती तो जीती रहती, तुम चाहे जो करते। तुम्हारा प्यार सहा, तुम्हारी घृणा सहकर भी जिन्दगी काट देती, पर उसके लिए मेरे दिलमें प्यार रहना जरूरी था। वह न रहा, वैसा न रहा। इसका मतलब है कि कुछ दिनोंमें इतना भी न रहेगा। नहीं, नहीं, मैं घृणा करती हूँ, तुमसे। हां, घृणा!

पर, पर, मोहन चुप ही रहा।

शरवतीकी आंखोंसे पानी गिरने लगा; पर वह कहती चली—हां, तुमने कह दिया, मैं नहीं करूँगा। मैं न कह सकी। मैं वेश्या न बन सकी, मेरे मां-बाप तैयार थे, तुम्हारे तैयार थे। मैं किसीको धोखा न दे सकी, अपनेको भी नहीं। दिलमें जलन और मुंहपर हंसी लेकर मैं दूसरेकी सेजपर नहीं बैठ सकी। बैठ सकती तो तुम भी सहनेको शायद तैयार थे, शायद तुम उसके लिए एक माफी भी मंजूर कर जाते। नीच! कमीने!

मोहनने कहा—बहुत नाटक हो चुका। अब सो रहो।

शरवतीने कहा—अगले जनममें जब तुम शरवती होओगे, तब समझोगे कि यह नाटक है या क्या! अभी नहीं समझोगे। पर उस जनममें भी [illegible] याद आने तो याद रहेंगी ही। उन्हें न भूल सकोगे। यह मैं अच्छी

तरह जानती हूँ। लो सोओ, यह याद रखना कि शरवती तुम्हारी थी, तुम्हारे ही लिए पैदा हुई थी, और जब तुम्हारी न रह सकी तो वह रही भी नहीं।

शरवतीने अपने बहते आंसू पोंछे और झटकेसे कमरेसे बाहर निकल गयी। २-३ मिनट मोहन स्तब्ध बैठा रहा, फिर वह घबराकर बाहर निकला।

बरामदेमें शरवती नहीं थी।

मोहनने आंगनमें झांका। आंगनमें चांदनी खिली हुई थी। घुटनोंतक पैर कुएँमें लटकाये शरवती बैठी थी, उसका सिर झुका हुआ था, वह सिसक रही थी।

मोहनका खून जम गया, उसकी जीभ मुंहमें सट गयी। कुछ क्षणों बाद बेतहाशा नीचे भागा, उसका नाखून उखड़ गया, उसे पता न था।

आधे आंगनतक मोहन पहुँचा था, शरवतीने इसकी ओर देखा, हाथ जोड़े और उसका शरीर कुएँके भीतर था। मोहनके पैर जम गये, उसके शरीर भरके खूनने दिलपर उछलकर धक्का मारा, वह खड़ा-खड़ा गिर पड़ा।

मोहनको जान पड़ा, कुएँकी संकरी गोल दीवालसे टकराती शरवती नीचे जा रही है! तब एक धमाका हुआ, केन्द्रका पानी एक बार नीचे दबकर ऊपरको उछला, चारो ओरका पानी केन्द्रकी ओर दौड़ा, ऊपर उछला पानी नीचे पानीपर गिरा और केन्द्रसे लहरें दीवालोंपर सिर पटकने लगीं। नीचेसे बुदबुदे ऊपर उठे, पानीने शरवतीको ऊपर फेंका। मोहनको लगा कि कुएँमेंसे शरवतीने आकुल कण्ठसे पुकारा—मोहन!

मोहन उठकर दौड़ा। कुएँपर लेटकर कान भीतरको लगाये, अपने नामकी प्रतिध्वनि उसे सुन पड़ी और नीचेसे उठते पानीके बुलबुलोंकी आवाज।

वह खड़ा हो गया। भीतर झांका। चांदकी तिरछी किरणें एक दीवालपर थीं, उनकी छायामें पानी हिलता जान पड़ा—उसे शरवती ऊपर उठती जान पड़ी, उसे जमीन धंसती-सी लगी। उसके पैर जैसे उखड़ गये और वह भी सीधा कुएँमें जा रहा।

दूसरा धमाका हुआ। मोहन और शरवतीकी मां, बाप, भाभी, सब आ गये। मोहनका खाली कमरा और धमाका......सब स्पष्ट था। आस-पासके लोग भी आ पहुँचे। डाक्टर भी। बाल्टीमें बैठकर एक आदमी कुएँमें उतरा, लालटैन कुछ ऊपर रस्सीमें बंधी थी। उसीके प्रकाशमें उसने दोनोंको बारी-बारीसे बांधा, उपरवालोंने खींचा।

डाक्टरने कहा—यह तो तत्क्षण ही मर चुकी होगी, दीवालोंसे टकराते-टकराते पूरा सिर फट चुका है। लालाजी! धीरज! मोहनकी अभी उम्मीद है।

पर डाक्टरकी चेष्टा व्यर्थ रही।

लालाजीने ध्यानसे दोनोंके शव देखे, उनके पैर लड़खड़ाये, पर वे सम्हलकर खड़े हो गये। फिर उन्होंने चांदपर नजर जमायी, इसके बाद दोनों हाथ सिरको सीधमें ऊपर किये और उन्हें तथा सिरको झटकेसे सामनेकी ओर झुकाकर ठठाकर हँस पड़े। तब बोले—वाह! क्या बात है!

वे फिर ठठा-ठठाकर हँसने लगे और हँसते ही हँसते गिर पड़े।

——:०:——

खड्ग

वह खड्ग बीचमें आठ अंगुल चौड़ा, १। अंगुल मोटा था और दो हाथ-से कम लम्बा भी न था। उसकी मूठ दोनों हाथोंसे पकड़ी जा सकती थी। खड्ग खूब चमकदार था। वह तारादासके अधिकारमें था और उनके शयन-कक्षमें, उनके पलंगकी दाहिनी ओरकी दीवालकी खूंटीमें नंगा लटका हुआ था।

तारादास बहुत बड़े जमींदार थे। उन्हें अपने स्वर्गीय पितासे जो चीजें मिली थीं उनमें तीन बहुत महत्वपूर्ण थीं।एक थी, उनका नाम 'तारादास'; दूसरी थी—वह खड्ग; तीसरी थीं उनकी (तारादासकी) धर्मपत्नी।

तारादासके पितामह बहुत बड़े तांत्रिक थे। वे 'तारा' देवीके, उग्रताराके, उपासक थे। उन्हें वह खड्ग अपने गुरुदेवसे प्रसाद रूपमें प्राप्त हुआ था। तारादासके प्रपितामहकी सिद्धियोंकी किंवदन्तियां अब तक प्रचलित थीं। बड़े-बूढ़ोंने तारादासको सैकड़ों सुनायी थीं।

तारादासके प्रपितामहने अपने घरके पास ही अपनी इष्टदेवीका मन्दिर बनवाया था। उन्होंने स्थापनाके दिन अपने हाथसे १०८ पशुओं (पशु-तांत्रिक दीक्षा जिसने न ली हो) के सिर काटकर, उनकी मुण्डमाला देवीको पहनायी थी और उन पशुओंके रक्तसे देवीको स्नान कराया था। पशुओंके सिर उन्होंने गुरु-प्रदत्त खड्गसे काटे थे।

तारादासके पितामह भी योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। उनकी जमींदारी-में बहुत कम अपराध होते थे, क्योंकि वे अपराधीको मृत्यु-दण्ड देते थे और अपने पिताके खड्गसे उसका सिर काटकर तारा देवीको चढ़ा देते थे।

तारादासके पिता भी कम योग्य न थे। वे भी तारा देवीके एकनिष्ठ सेवक थे। उनके हाथोंसे भी देवीको अनेक मुंड अर्पित हुए थे। उन्होंने अपने पुत्रका नाम ही तारादास रखा था।

माधवीने सहज भ्रू-भंगके साथ कहा—तो मैं क्या करूं।

इस व्यक्तिने माधवीके पैर पकड़कर कहा—दीदी! तुम चाहो तो मेरा उद्धार हो सकता है। सयानी लड़की है, कलकी कौन जाने!

माधवीने कहा—अच्छा, कल अखाड़ेमें आना।

तारादासने वैष्णवोंके लिए जो मकान पृथक् कर दिया था उसे वे अखाड़ा कहते थे।

दूसरे दिन वह व्यक्ति माधवीके पास आया। माधवीने उससे प्रार्थना-पत्र लिखवाया और तारादासके पास भेज दिया।

तारादासने प्रार्थना-पत्र पढ़ा, लेखनी उठायी और पूछा—तुम माधवी-को कबसे जानते हो?

कलसे हुजूर।

तारादासने लिखा—१००) दिये जायं—तारादास।

दूसरे दिन माधवी उस व्यक्तिको साथ लेकर तारादासके पास आयी।

उस व्यक्तिने कहा—दीवानजीने पुरजा ले लिया और मुझे धक्के देकर निकलवा दिया।

तारादासने एक पुर्जा लिखकर उसे दिया—२००) दिये जायं।

तीसरे दिन तारादासने ३००) का पुरजा लिखा।

चौथे दिन उस व्यक्तिने पीठपर कोड़ोंके निशान दिखलाये और चुप-चाप खड़ा रहा।

तारादासने १०००) का पुरजा लिख दिया!

फिर वह व्यक्ति नहीं आया। दीवानजीने उसे १००) देकर विदा कर दिया था।

इसके बाद ही से रोज १०-५ व्यक्ति माधवीको घेरने लगे, वह उन्हें तारादासके पास भेजने लगी और वे पुर्जे लिखने लगे—रुपये देंगे, [illegible], [illegible]।

[illegible] बीता। एक दिन [illegible] ज़मींदारके यहां जाकर, [illegible]

पहले ही, लगान जमा कर जाती थी। अव वसूलीके लिए दीवानजी आदमी भेजते थे, और वसूली न होती थी। प्रजा वसूल करने आनेवालोंको टरकाती थी, वहाने करती थी, माधवीके यहां अपनी पहुंचका संकेत करती थी, उसके यहां जानेकी धमकी देती थी।

लोग जमींदारकी भूमिपर कब्जा कर रहे थे, जंगल काट रहे थे, छावनियोंमें चोरी भी करने लगे थे।

दीवान साहवकी ओरसे सख्ती होनेपर न जाने किस युक्तिसे उन्हें जमींदारसे माफी और हर्जानेकी रकम वसूल करनेका पुरजा मिल जाता था।

दीवानने अपनी पकी भौंहोंपर हाथ फेरा और लम्बी सांस लेकर उठ खड़े हुए। वे अन्तःपुरकी ओर चले।

हेमने पूछा—अव चाचाजी?

दीवानने कहा—स्थिति शोचनीय है, पर मैंने हिम्मत नहीं हारी है अव माधवीको दूर करना होगा।

हेमने कांप कर कहा—चाचाजी! स्त्रीके खूनसे हाथ रंगेंगे?

दीवानने हंसकर कहा—छिः पगली! ऐसी सामान्य स्त्रीका खू नहीं। उसे सिर्फ यहांसे हटा देना होगा।

× × × ×

५-७ दिनों वाद, एक दिन प्रातःकाल ही दीवानजी अन्तःपुरमें तारादास जलपान करके अखाड़े जानेकी तैयारीमें थे।

तारादासने उठकर प्रणाम किया और पूछा—आज सवेरे

दीवानने कहा—फिर तो तुमसे भेंट हो ही नहीं सकती

तारादासने संकुचित होकर पूछा—कोई खास वात है?

दीवानने कहा—हां, १३० गांवोंने लगान न देनेका निश्चय उनके मुखियोंने सूचना भेजी है।

तारादासने पूछा—क्यों?

दीवान—सोचा होगा कि जब किसी भी व्यक्तिका लगान माफ हो सकता है, तो पूरे गांव हीका क्यों न हो जाय !

तारादासने और भी संकुचित होकर पूछा—इस तरह तो पूरी जमींदारीके गांव लगान न देनेको कहेंगे।

दीवान—उपक्रम तो इसीका है।

—आप वसूल कीजिये।

—ठीक है। लेकिन १३० गांवोंके एक चकले, जबरन वसूलीके लिए कितने आदमी चाहियें, यह भी सोचा है ?

तारादास मौन हो गये।

दीवानने पुनः कहा—उन्होंने यह भी कहलाया है कि अगर लगानकी माफी न हुई तो...

तारादासने चौंककर पूछा—तो क्या !

—तो पहला वार माधवीपर होगा।

—और दूसरा ?

तुमपर।

दीवानने पुनः कहा—सात दिनोंकी अवधि है।

तारादासने सिर झुका लिया और न जाने क्या सोचने लगा।

× × × ×

माधवीने अपने तारादासकी बातें हंसीमें उड़ा दीं। उसने कहा—सब दीवानजीकी चालाकी है।

अवधिमें एक दिन शेष था। उस दिन तारादास महाभारत-चर्चा समाप्त कर कुछ जल्दी ही लौटे थे और पलंगपर लेटते ही उन्हें नींद आ गई थी। दिन ढलनेके पहलेसे सोये थे।

तारादासने चौंककर इधर-उधर देखा। हवा तेज न थी। उनकी दृष्टि पुनः खड्गपर पड़ी। मूठकी ओर वह गुलावी दिखलाई दिया। धीरे-धीरे एक लपट-सी निकलने लगी और वह खड्गके दूसरे छोरकी ओर वढ़ने लगी। कुछ ही देरमें सारा खड्ग लाल हो गया। तारादासने आंखें मलीं और तकियेके सहारे उठंगकर वैठ गये। खड्गमें अव एक मनुष्य दिखलाई पड़ रहा था।

वह मनुष्य लुप्त हो गया था। अव खड्गमें एक पहाड़ दिखलाई दिया। वह धीरे-धीरे जैसे धंसने लगा। उसकी चोटी दिखलाई देने लगी। चोटीपर एक मन्दिर था। मन्दिरमें एक देवीकी मूर्ति थी। उसके तीन मुंह, छः आंख और वारह हाथ थे। हाथोंमें तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र थे। वह सिंहपर वैठी थी। उसके माथेपर द्वितीयाका चन्द्र था।

देवीके सामने व्याघ्र-चर्मपर एक मनुष्य वैठा था। यह वही था जो खड्गमें पहले दिखाई पड़ा था। (हम कहानीमें उसे 'सिद्ध' कहेंगे) उसके पास पूजाका उपकरण, मद्य और मांस रखा था। वह नंग्न था।

अव मन्दिरमें एक और व्यक्ति प्रविष्ट हुआ। वह दीर्घाकार और नग्न था। उसके अंग-प्रत्यंगसे निश्चयकी दृढ़ता व्यक्त हो रही थी। (इसे हम कहानीमें 'साधक' कहेंगे।) उसने आकर सिद्धको अष्टांग प्रणाम किया। सिद्ध अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ। उसपर साधक वैठ गया। वह जप करने लगा। सिद्ध चुपचाप खड़ा था।...तीन दिन वीते।...साधकका जप समाप्त हुआ। उसने देवीकी पूजा की और अपने आसनके नीचेसे खड्ग निकाला। तारादास उसे पहचान गये। वही उनके कमरेमें टंगा था।

साधकने खड्गपर जल छिड़का, देवीके सामने सिर झुकाया और उसपर खड्गसे प्रहार किया। सिर कटकर देवीके चरणोंपर जा गिरा। देवी-के चरण रक्ताक्त हो गये। देवी हिली और सिंहपरसे उतरकर उसने साधक-का सिर उठा लिया। तव उसने साधकके कवन्धको सीवा वैठाया और कटे

स्थानपर सिर रख दिया। साधक उठकर खड़ा हुआ और पुन: देवीके चरणोंमें लेट गया। अब सिद्ध भी प्रणाम-मुद्रामें था।

बिजली-सी चमकी। देवीकी मूर्ति यथास्थान थी। साधक सिद्धके पैरोंपर पड़ा था। सिद्धके नेत्रोंसे आंसू बह रहे थे। उसने साधकका आलिंगन किया और खड्ग उसे दे दिया।

फिर बिजली चमकी। साधक सुवेशमें एक मकानमें बैठा था। मकान वही था, जिसमें अब तारादास थे। मकानसे कुछ दूरपर एक मन्दिर बन रहा था। वह बनकर तैयार हुआ। उसमें मूर्ति ठीक वैसी थी, जैसी पहाड़के मन्दिरमें थी। ब्राम्हणोंने मूर्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा की।...रात हुई। साधक मन्दिरमें जप कर रहा था। आधी रात हुई। साधक उठकर खड़ा हुआ। उसने पास रखा खड्ग उठा लिया। उसने द्वारकी ओर देखा। वहां कुछ मनुष्य खड़े थे। उनमेंसे एक स्वप्नाविष्ट-सा आगे बढ़ा और वह देवीके सामने आ, जमीनपर सिर रख, औंधा बैठ गया। साधकका खड्ग चमका, खच शब्द हुआ। प्रणाम करनेवाले-का सिर कटकर देवीके पैरोंके पास पड़ा था। साधकने पुनः द्वारकी ओर देखा, दूसरा व्यक्ति आगे बढ़ा।...प्रातःकालके पहले १०८ सिर वहां कटे पड़े थे।...साधकने देवीको प्रणाम किया। देवीके मुख-मण्डलपर प्रसन्नता-की आभा थी।

तारादासने साधकको पहचान लिया। वह उनका प्रपितामह तारानिकर था।...तारादासके प्राण उनकी आंखोंमें थे। उन्हें देहाध्यास न था। दृश्य बदला। मन्दिरमें तारानिकर बैठे थे। उनके सामने एक आदमी खड़ा था। तारानिकरने उसकी ओर देखा और तब देवीसे कहा—देवि! मेरे इस पुत्रपर कृपा बनी रहे।

देवीके मुखपर स्मित-रेखा फैल गयी। तारानिकरने आंखें बन्द कीं, उनका शरीर कांपा और शरीरसे प्राण निकल गया।...

तारादासके पितामह उसी मन्दिरमें थे। उनके हाथोंमें वही खड्ग था। सामने ११ पशु खड़े थे।...

तारादासके पिता उसी मन्दिरमें थे। उनके सामने भी पशु थे।... पिताने तारादासकी ओर क्रुद्ध दृष्टिसे देखा और बिजली चमकी।... खड्ग हिल रहा था। उसपर दीपककी किरणें खेल रही थीं।

तारादासके मुखसे एक चीत्कार निकला और वे मूच्छित होकर, धमसे पलंगके नीचे गिर पड़े।

तारादासकी मूर्च्छा दूर हुई। उन्होंने आंखें खोलीं और विह्वल भावसे चारो ओर देखा। तब वे उठ बैठे। हेमने उनकी आंखोंपर पानीके छींटे देना बन्द कर दिया था, आसपास ८-१० दासियां खड़ी थीं।

तारादासकी दृष्टि खड्गपर जम गयी। उनका ध्यान फिर खिंचा। बाहर अत्यन्त कोलाहल हो रहा था। तारादासने उसका कारण पूछा।

कोई न बोला। तारादासने पुनः पूछा। एक दासीने कहा—महलके बाहर ५-७ हजार आदमी हैं, वे लगान माफ कराने आये हैं।

तारादासने पूछा—दीवानजी कहां हैं?

एक दासी दीवानजीको बुलाने गयी।

दीवानजीने कहा—उन गांवोंकी प्रजा बागी हो गयी है। वह माधवीको उठा ले गयी है। उसे बचानेमें अखाड़ेके सब वैष्णवोंके हाथ-पैर टूट चुके हैं।

तारादास खड़े हो गये। उन्होंने बढ़कर, खूंटीसे खड्ग उतार लिया, और पूछा—यहां हमारे कितने सेवक हैं?

१००-१२५। मैंने ५०० आदमी और बुला लिए हैं। सबको तलवारें दे दी गयी हैं।

सब कहां हैं?

—नीचे, महलके अहातेमें।

तारादास नीचे आये। अहातेमें पंक्ति-बद्ध सेवक नंगी तलवारें लिये खड़े थे।

तारादास सीढ़ीपर खड़े हो गये। उन्होंने कहा—प्रजाको भीतर बुलाओ।

४-५ सेवक फाटकसे बाहर दौड़े और कुछ ही देर बाद हजारों आदमी भीतर घुसे। वे चिल्ला रहे थे—लगान नहीं देंगे, लगान माफ करो।

तारादासने खड्गवाला हाथ ऊपर उठाया। सन्नाटा छा गया। तारादासने कहा—अपने मुखियोंको इधर भेजो।

पांच आदमी तारादासके सामने आ कर खड़े हो गये।

तारादासने जलती आंखोंसे उन्हें देखकर पूछा—क्या चाहते हो?

—लगानकी माफी।

—क्यों?

—नहीं देंगे।

—जमींदारीमें नहीं रहोगे?

—रहेंगे।

—तब लगान क्यों न दोगे?

—हमारी इच्छा।

तारादासने सहसा खड्ग उठाया और एक मुखियाका सिर कटकर जमीनपर गिर पड़ा।

बाकी चारों पीछे हटे।

तारादासने चिल्लाकर कहा—मारो, मारो। ताराको चढ़ानेके लिए १०८ सिर चाहियें।

दूसरे ही क्षण ५०० तलवारें झनाझन चलने लगीं। सिर कटने लगे, धड़ कटने लगे; रक्तकी धारसे भूमि भिगने लगी, चीत्कार होने लगे; एक हजारसे [illegible], [illegible], गिरकर, लोग फाटकके बाहर भागने लगे, धूल उड़ने लगी।

[illegible] लोग भी भाग गये। लोग [illegible] थे। हजारों आद-

मियोंके मुंहसे यह बात निकल रही थी—भागो, भागो, ताराकिंकर आ गया।

और तारादास एक हाथमें खड्ग, दूसरेमें दो-तीन मुण्ड लिये देवीके मन्दिरकी ओर जा रहे थे। उनके पीछे नंगी, लाल तलवारें और मुण्ड लिये सैकड़ों सेवक थे।

दीवानजी बरामदेमें खड़े मुस्कुरा रहे थे और हेम भूमिष्ठ हो किसीको प्रणाम कर रही थी।

दैवो न जानाति

आठ कोसके घेरेमें मेला था। कहीं हाथियोंकी कतार थी, कहीं घोड़ोंकी, कहीं खच्चर थे, कहीं सांड़, कहीं भैंसे थे, कहीं ऊंट।

एक ओर तोते थे तो एक ओर मैना, एक ओर कबूतर थे तो एक ओर बाज, एक ओर मोर थे तो एक ओर कौए।

एक जगह हिरन थे तो एक जगह खरगोश, एक जगह सफेद चूहे थे तो एक जगह गिलहरी!

और भी चीजें बिक रही थी—मिठाई, कपड़ा, सुई, इत्र, घड़ी कलम, साबुन, ग्रामोफोन, ट्रंक, ताले, मिस्सी, सुरमा, कंघी, शीशा, सुराही, लोटा, ऊन... और ...और .. जवानी!

खरीददार भी थे, तमाशबीन भी। तमाशबीन भी खरीददार बननेका नाटक कर लेते थे। उनकी जेबकी असमर्थता भी चीजोंका मोलभाव कर लेती थी। वह मेला था, [illegible] दुकान नहीं, जिसमें आकर खाली हाथ नहीं लौटा जाता।

आदमियोंके इस जंगलमें तरह-तरहकी पोशाक देखनेमें आती थी। तरह-तरहकी भाषाएं सुन पड़ती थीं। तरह-तरहकी हंसी, तरह-तरहके [illegible], तरह-तरहके [illegible], तरह-तरहके आवाहन, तरह-तरहकी [illegible]! सब मिलाकर [illegible]!!

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पर रखी थी और सामनेकी कपड़ेकी दुकानकी फालतू रोशनीसे जगमगा रही थी।

खरीददार बहन-भाई थे, बहन चार बरसकी भाई आठ बरसका।

दुकानदार अपने मालके खरीदारोंको संभ्रमसे देख रहा था—उसकी दुकानपर इतने साफ कपड़े पहननेवाले खरीदार न आते थे। वह चाहता था कि खरीदार शीघ्र कुछ खरीद लें। वह चारो ओर देख रहा था। उसे आशंका थी कि इन खरीदारोंका अभिभावक आ निकला तो यह हाथसे निकल जायंगे।

बालकने पूछा—गुड़की पट्टी है। लेगी?

बालिकाने कहा—ऊं हूं, घेवर!

बड़ा खरीदार छोटेको खींचकर आगे बढ़ा।

दुकानदारने आवाज लगायी—कुरकुर पट्टियें...गुलाबजलकी!

थोड़ी दूर आगे एक आदमी खड़ा था। उसके एक हाथमें मुंहसे बजानेके ४-६ बाजे थे, दूसरेमें एक था। उसे वह अपने ओठोंमें अगल-बगल सरकाकर बजा रहा था। उसके कन्धेपर एक बड़ी झोली लटक रही थी।

बड़े खरीदारने एक बाजा मांगा। उस आदमीने पूछा—पैसे हैं?

बालकने जेबसे एक अठन्नी निकाली। बाजेवालेने चटसे बालकके हाथसे अठन्नी ली और एक बाजा उसे देकर एक ओर बढ़ गया।

बालिकाने बाजा लेनेको दोनों हाथ बढ़ाये। बालकने कहा—तू तो घेवर लेगी न!

बालिकाने रोना मुंह बनाकर कहा—बाजा!

बालक उसे बजा रहा था।

बालिका रोने लगी।

बालकने कहा—अच्छा, पैसे दे!

बालिकाने अपनी जेबमेंसे एक मुट्ठी पैसे निकालकर जल्दीसे भाईके हाथमें रख दिये, पर इसके पहले उसने बाजा दूसरे हाथसे पकड़ लिया था।

कुछ पैसे गिर पड़े। बालकने उन्हें झुककर उठा लिया।

फिर दोनों आगे बढ़े। सहसा बालिका चिल्लाई—घेवर, मिठाई!

सामने ही मिठाईकी एक चमचमाती दुकान थी। दोनों वहां खड़े हुए।

भाईने कहा—मिठाई नहीं मिलेगी।

बहनने बाजा भाईके हाथमें देकर कहा—घेवर।

भाईने सब पैसे दूकानदारकी ओर बढ़ाकर कहा—घेवर।

दूकानदारने सुना नहीं। एक खरीदारने बालकके हाथसे पैसे ले लिए और हलवाईने घेवर लेकर बालकको दिया।

बहनने तुरन्त घेवरपर कब्जा कर लिया और खाना शुरू कर दिया।

भाईने हाथ फैलाया। बालिकाने चुटकीसे दिया। उसे मुंहमें रखकर भाईने फिर हाथ फैलाया। बहन उसकी ओर पीठ करके खड़ी हो गयी।

तभी भाईने व्याकुल कण्ठसे कहा—चाचाजी! अम्मां!

बालिका तुरन्त घूमी, उसने भी पुकारा—अम्मां! चाचाजी!

बालकने पूछा—अम्मां कहां है?

बालिकाने कहा—अम्मा।

और वह घेवर खाने लगी।

बालकने इधर-उधर देखा। सहसा उसने कहा—वह रहे!

और वह एक ओर भागा। बालिका भी खाते-खाते उधर बढ़ी, फिर खड़ी होकर खाने लगी।

कुछ देर बाद बालिकाने इधर-उधर देखा, तब वह आने-जाने वालोंका मुंह देखने लगी। इसके बाद वह रोने लगी—अम्मा, चाचाजी!

कुछ मिनट बीतनेपर एक आदमीने बालिकाको गोदमें उठा लिया। बालिकाने खूब गौरसे उसका मुंह देखा और तब रोने लगी। साथ ही वह हाथ-पैर पटक कर गोदसे उतरनेकी चेष्टा करने लगी।

उस आदमीने कहा—चलो अम्माके पास।

बालिका चुप हो गयी। वह आदमी उसे लेकर एक ओर चला।

:o: :o: :o:

मेलेमें एक जगह, तम्बुओंकी एक लम्बी कतार आमने-सामने थी। बीच-में ५-७ हाथ जगह छोड़ दी गयी थी, जो सड़कका काम दे रही थी। एकसे दूसरे तम्बूके बीचमें भी ४-५ हाथ जमीन छोड़ दी गयी थी। उन जगहोंमें प्रायः पान, सिगरेट और पाउडर, ताश वगैरह की दूकानें थीं। इन तम्बुओंमें हाट थी। न खरीदार कम थे, न हाटकी चीजें। हाटके मालिक और खरीदार दोनों ही मोलभावमें दक्ष थे। खरीदारोंकी आंखों और जबानोंमें बेशर्मीकी पूंजी कम न थी। हाटवाले भी कम हाजिर-जवाब न थे।

इसी हाटके एक तम्बूमें एक औरत बैठी थी। उम्र १९ के ऊपर नहीं, रंग कुछ सांवला, आंखें कुछ बड़ी, शरीर सुडौल, चेहरेपर आभा और उस आभामें शालीनता और संकोचकी झलक !

तम्बूमें गद्दा बिछा था, एक कोनेमें ४-५ गावतकिये, ताड़का एक बड़ा पंखा, हारमोनियम, तबला और सारंगी रखी थी। एक झोलीमें घुंघरू भी।

वह बीचमें बैठी पान लगा रही थी—पनडब्बा सामने खुला हुआ था। उसके शरीरपर गिने गहने थे।

उसने एक पान बनाकर मुंहमें रखा। तभी एक अधेड़स्त्रीने वहां प्रवेश किया। उसकी गोदमें एक बच्चा था।

अधेड़ स्त्रीके भीतर घुसते ही बच्चेने कहा—'अम्मां !' और वह गोदसे उतरनेको छटपटाने लगा।

अधेड़ने उसे उतार दिया। वह दौड़कर बैठी हुई स्त्रीके पीछेसे उसके गलेमें अपनी छोटी-छोटी बांहें डालकर झूलने लगा। उसने फिर कहा—'अम्मां !' बच्चेकी आवाजमें प्रसन्नता थी।

स्त्रीने गलेसे वे नन्हे हाथ छुड़ाये और उन हाथोंवालेको सामने किया।

वह चार बरसकी एक लड़की थी। उसके हाथमें एक कागज था, उसमें घेवरका एक टुकड़ा था।

उस स्त्रीने अधेड़की ओर देखा। इधर बालिकाने इस स्त्रीकी ओर देखा और वह रोने लगी।

कोयलने आवाज दी। वही अधेड़ आयी। कोयलने कहा—जल्दी रेल-गाड़ी खरीद लाओ।

कोयलने घुंघरू मुन्नीकी कमरमें बांधे। कहा—नाचो!

मुन्नीने कहा—शामा नाचती है।

कौन शामा?

शामा नाचती है। ऐसे, ऐसे—(मुन्नी ने पैर पटककर और दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा।)

कोयलने मुन्नीका मुंह चूम लिया। रेलगाड़ी आ गयी। मुन्नी उसे जमीन पर अपने दोनों पैरोंके बीच रखकर खुद चलने लगी और हाथसे उसे चलाने लगी। कोयलने उसमें चावी भरी, पर वह गद्देपर न चली। कोयलने उसमें एक तागा बांधा। मुन्नी तम्बू भरमें रेल चलाने लगी।

दो-चार वार चलाकर मुन्नी कोयलके पास आयी। उसके कन्धेपरसे साड़ी पकड़कर कहा—अम्मां पास चलो।

कोयलने पूछा—अम्मां कहां है?

वाहर।

कहां?

वाहर।

वाहर?

हां, चाचाजी। अम्मां!

मुन्नी वेटी! रेल ले चलें?

हां, भैयाको नहीं देना।

भैया कहां है?

अम्मां पास।

भैया कितना वड़ा है?

मुन्नीने दाहिना हाथ सिरकी सीधमें उठाकर, पंजोंके वल खड़ी होकर कहा—इतना वड़ा।

अधेड़ने कहा—इसे चुप कर।

कौन है यह ?

तेरी भतीजी।

इसकी मां ?

पता नहीं। यह मेलेमें मिली। जल्दी चुप कर।

क्या करोगी ?

पालूंगी।

फिर ?

अधेड़ हंस पड़ी। तब कहा—देखा जायगा। और बाहर चली गयी।

बालिका रो रही थी। उसे चुप करनेकी चेष्टा होने लगी—रानी बिटिया! चुप, चुप। ले, मिठाई खा। ले, यह, ले घुंघरूले!

बालिका चुप न हुई। अधेड़ने भीतर आकर क्रुद्ध स्वरमें कहा—कमाल है बीबी! कमाल!! जरी-सी बच्ची चुप नहीं की जाती। (दबे स्वरमें) कोई सुन ले तो लेनेके देने पड़ें!

तभी एक अधेड़ आदमी भी घुस आया। उसने कहा—गोदमें लो, गोदमें, किसी तरह बहलाओ! अब रोये नहीं, समझी कोइल!

दोनों बाहर चले गये। कोयलने बालिकाको गोदमें उठाया, उसके आंसू अपने आंचलसे पोंछते हुए कहा—चलो अम्मांके पास चलें, चुप हो जाओ।

बालिका चुप हो गयी। कोयलने कहा—रोते नहीं। चुप हो जाओ। मोटरमें चलेंगे।

बालिकाने किलककर कहा—मोटर, भों-भों......

कोयल बोली—हां, रेलगाड़ी। छक-छक, झुक-झुक, झक-झक। रेल-गाड़ी लोगी ?

बालिकाने हाथ फैलाये।

पहले नाम बताओ!

मुन्नी।

कोयलने आवाज दी। वही अधेड़ आयी। कोयलने कहा—जल्दी रेल-गाड़ी खरीद लाओ।

कोयलने घुंघरू मुन्नीकी कमरमें बांधे। कहा—नाचो!

मुन्नीने कहा—शामा नाचती हैं।

कौन शामा?

शामा नाचती है। ऐसे, ऐसे—(मुन्नी ने पैर पटककर और दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा।)

कोयलने मुन्नीका मुंह चूम लिया। रेलगाड़ी आ गयी। मुन्नी उसे जमीन पर अपने दोनों पैरोंके बीच रखकर खुद चलने लगी और हाथसे उसे चलाने लगी। कोयलने उसमें चावी भरी, पर वह गद्देपर न चली। कोयलने उसमें एक तागा बांधा। मुन्नी तम्बू भरमें रेल चलाने लगी।

दो-चार वार चलाकर मुन्नी कोयलके पास आयी। उसके कन्धेपरसे साड़ी पकड़कर कहा—अम्मां पास चलो।

कोयलने पूछा—अम्मां कहां है?

बाहर।

कहां?

वाहर।

वाहर?

हां, चाचाजी। अम्मां!

मुन्नी बेटी! रेल ले चलें?

हां, भैयाको नहीं देना।

भैया कहां है?

अम्मां पास।

भैया कितना वड़ा है?

मुन्नीने दाहिना हाथ सिरकी सीधमें उठाकर, पंजोंके वल खड़ी होकर कहा—इतना वड़ा।

बाजा बजाओगी ?

बाजा ! अम्मां रोज बजाती है ।

रोज ?

हां, रोज बजाती है। तवेका बाजा।

हम बजावें ?

मुन्नीने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

तम्बूके भीतरसे एक दूसरे तम्बूमें जानेका रास्ता था। मुन्नीको गोदमें लेकर कोयल उसीमें गयी, ग्रामोफोन ठीक किया और रेकार्डपर सुई रख दी।

मुन्नीने ग्रामोफोनमें कान लगाया और लेटकर सुनने लगी। एक रेकार्ड सुनकर मुन्नीने फिर कहा—अम्मा पास।

कोयलने अपने गलेका हार दिखलाकर पूछा—पहनोगी ?

मुन्नीको आपत्ति न थी।

हार पहनकर मुन्नी प्रसन्न हुई।

अब मुन्नीने प्रश्न किया—कब चलोगे ?

अभी।

तुम भी अम्मा पास चलोगे ?

हां।

नहीं, तुम अपनी अम्मा पास जाओ।

कोयलके जैसे चाबुक लगा। पर उसने फीकी हंसी हंसकर कहा—तुम्हारी अम्मा पास चलेंगे।

मुन्नीने जिदसे जमीनपर पैर पटककर कहा—नहीं।

कोयलने भी जिदसे ही कहा—नहीं।

चाचाजी मारेंगे।

कोयल डरकर बोली—चाचाजी मारेंगे ?

हां।

तुमको मारते हैं ?

नहीं।

भैयाको ?

नहीं।

अम्माको ?

नहीं।

किसको मारते हैं ?

तुमको मारेंगे।

कोयलने कहा—तुमको मिठाई देते हैं ?

मुन्नीने सिर हिलाया।

हमको देंगे ?

नहीं।

तुम दोगी ?

मुन्नीने क्षणभर सोचा, फिर कहा—'हां।' और उसने घेवरका टुक...
...ठा कर देनेको हाथ बढ़ाया।

कोयलने अपनी आंखें पोंछकर, मुन्नीको गोदमें ले लिया और आ...
बोली—रानी मुन्नी ! तुम खा जाओ।

मुन्नीने इसमें भी आपत्ति न की।

मुन्नीने फिर पूछा—तुम्हारा घर कहां है ?

कोयल प्रत्यक्ष रूपमें सिहर उठी। वह बोली नहीं।

मुन्नीने फिर वही पूछा।

कोयलने कहा—कहीं नहीं ! तुम्हारे घर चलें ?

मुन्नीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—चलो।

कोयलकी आंखोंसे टप-टप आंसू गिर रहे थे।—जिस प्रकार...
...ने कह दिया, वैसे ही, वैसे ही, अगर मेरा कोई कह सकता. . . .

मुन्नीने पूछा—क्यों रोती हो ?

कोयलने आंखें पोंछीं। कहा—मारा !

मुन्नीने व्यग्र होकर पूछा—किसने मारा ?

तकदीरने।

मुन्नीने पूछा—'हम मारें ?' मुन्नीका हाथ मारने उठ गया था।

मुन्नीका वह हाथ अपने माथेपर रखकर, तब कोयल एकाएक जमीनपर लोट गयी।

मुन्नी देखती रही, तब उसकी पीठपर बैठकर कहा—चल घोड़े चल !

कोयलने कहा—'मुन्नी सुनो !' मुन्नीने सवारी जमाये हुए ही कहा—क्या ?

आओ।

मुन्नी उतरकर गयी। कोयलने उसे अपने पास लिटाकर पूछा—

कहानी सुनोगी ?

मुन्नी कोयलसे चिपट गयी। उसके हाथपर सिर रखकर कहा—सुनाओ।

कोयलने कहा—एक था आदमी। मुन्नीने कहा—ये नहीं, राजाकी कहानी।

कोयलने कहा—एक था राजा।

हूं।

उसके थी एक बिटिया।

हूं।

उसका नाम था, अच्छा, कुछ था।

उसका नाम 'कुछ' था ?

हां।

तब ?

राजाका एक नौकर था।

हूं।

उसने लड़कीसे कहा—चलो जंगलमें चलें।

हूं।

दोनों गये।

हूं।

नौकरने एक दिन लड़कीको कुएंमें ढकेल दिया।

हूं।

नौकर भाग गया।

हूं।

एक डाकूने लड़कीको निकाला।

हूं।

डाकूने लड़कीको कैद कर लिया।

हूं।

बहुत दिन बाद लड़कीने राजाको चिट्ठी लिखी।

हूं।

राजाने जवाब नहीं दिया। एक भी चिट्ठीका जवाब नहीं दिया।

डाकूने लड़कीसे कहा—तू कमा और हमको खिला।

लड़की वही करने लगी, उसने एक पौसरा चलाया।

हूं।

लोग पानी पीते थे, सुस्ताते थे, चले जाते थे।

दो-तीन आदमियोंने कहा—तू यहां क्यों आयी?

लड़कीने कहा—तुम्हारी यह बात सुनने। तुम क्यों आये?

कोयलने सिर नीचाकर देखा—मुन्नी सो गयी है, न जाने कब। कोयल भी सो गयी।

:o: :o: :o: :o: :o: :o:

कोयलकी नींद खुली—बातचीत सुन पड़ी। कोयल हिली नहीं, पड़ी सुनती रही।

दोनों अबेड़ बातें कर रहे थे।

लड़की बहुत ही खूबसूरत है।

तभी तो मैंने रहमतुल्लाको ५०) गिन दिये!

बड़ी होगी तो मालोमाल कर देगी।

इसे यहांसे आज ही हटा देना है।

क्या इन्तजाम किया ?

सुबहके पहले ही तांगा आ जायगा। लड़की कोयलसे हिल गयी है। वह जाकर छोड़ आवेगी।

तुम जानो !

मैंने कच्ची गोलियां थोड़े ही खेली हैं !

दोनों उठकर चले गये। कोयल बहुत देरतक लेटी रही। तब उसने धीरे-धीरे मुन्नीको जगाया।

मुन्नीने आंखें खोलते ही कहा—अम्मा ! कहानी !

कोयलने उसका मुंह चूमकर कहा—अम्मा पास चलोगी ?

मुन्नीने चैतन्य होकर कोयलका मुंह देखा। वह उठ बैठी, कहा—अम्मा पास !

कोयल भी बैठी। मुन्नीको गोदमें लेकर कहा—मेरे पास रहोगी ?

नहीं।

अब मेरा घर हो जायगा।

अम्मा पास।

कोयल मुन्नीको गोदमें लिए उठ खड़ी हुई। वह धीरे-धीरे खेमेके पिछले हिस्सेमें आयी। उधरसे बाहर निकलनेका एक रास्ता था, वहां एक नौकर सोया था।

कोयलने उसे पैरसे हिलाया। वह आंखें मलता उठ बैठा। कोयलने कहा—हट जरा।

वह हट गया और कोयलके बाहर निकलते ही फिर लेट गया।

कोयल आगे बढ़ी। धीरे-धीरे वह जनारण्यमें मिल गयी।

बहुत आगे बढ़कर, उसने एक स्वयंसेवकसे पूछा—आर्यसमाजका कैम्प कहां है ?

स्वयंसेवकने नम्रतासे कहा—आइये।

कोयल उसके पीछे-पीछे चली......।

——:०:——

स्कन्दपुत्र

[संस्कृत साहित्यमें चौर्य (चोरी) और दस्युता (डाका) का उल्लेख मिलता है। इनकी गणना उपकलाओंमें है। उपकलाएँ अनेक हैं—८०० का उल्लेख है।

ज्ञात होता है कि चौर्य विद्याके प्रथम आचार्य शिव-पुत्र कार्त्तिकेय हैं। कनकशक्ति, भास्करनन्दी और मूलदेव बादके आचार्य हैं। संस्कृत साहित्यमें मूलदेव प्रसिद्ध है। कादम्बरी, अवन्तिसुन्दरी कथा, कलाविलास आदि ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख है। मूलदेवका ही नाम 'कर्णीसुत' है। इनके 'कर्णीसुत-सूत्र'का उल्लेख मिलता है। यह चौर्य और धूर्त्तताकी शिक्षाका ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ या इसके उद्धरणतक प्राप्त नहीं हैं।

चोरीके कुछ औजारोंका उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। प्रतिशीर्षक (नकली सिर) का उपयोग तो अब भी होता है। पक्के चोर सेंध लगानेके बाद छिद्रमें नकली सिर घुसाते हैं। यदि कोई उसपर प्रहार करता है तो चोर भाग जाते हैं। प्रतिशीर्षक, पुरुष-शीर्षक या प्रतिमुण्ड एक ही वस्तु है।

संधि (सेंध) करनेके कुछ रोचक नियम भी प्राप्त हुए हैं। दीप बुझानेके लिए एक विशेष प्रकारके कीटका उल्लेख भी है।

स्कन्दपुत्र चोरको कहते हैं। चोरोंके अनेक भेद हैं। कुछ भेद इस कहानीसे व्यक्त होंगे। —लेखक]

काश्मीरमें प्रत्यभिज्ञा दर्शनकी पुष्टि आचार्य अभिनवगुप्तपाद कर रहे थे; उनके शिष्य महाकवि क्षेमेन्द्र अपनी रस-पिच्छिल रचनाओंसे संस्कृत भाषाको धन्य कर रहे थे, जिनकी रसनापर सरस्वती नृत्य करती थी। उसी समयकी और वहींकी बात है।

सूचीभेद्य अन्धकारका साम्राज्य था जो मयूरोंके गलोंमें, कामिनियोंके

बड़ी होगी तो मालोमाल कर देगी।

इसे यहांसे आज ही हटा देना है।

क्या इन्तजाम किया?

सुबहके पहले ही तांगा आ जायगा। लड़की कोयलसे हिल गयी है। वह जाकर छोड़ आवेगी।

तुम जानो!

मैंने कच्ची गोलियां थोड़े ही खेली हैं!

दोनों उठकर चले गये। कोयल बहुत देरतक लेटी रही। तब उसने धीरे-धीरे मुन्नीको जगाया।

मुन्नीने आंखें खोलते ही कहा—अम्मा! कहानी!

कोयलने उसका मुंह चूमकर कहा—अम्मा पास चलोगी?

मुन्नीने चैतन्य होकर कोयलका मुंह देखा। वह उठ बैठी, कहा—अम्मा पास!

कोयल भी बैठी। मुन्नीको गोदमें लेकर कहा—मेरे पास रहोगी?

नहीं।

अब मेरा घर हो जायगा।

अम्मा पास।

कोयल मुन्नीको गोदमें लिए उठ खड़ी हुई। वह धीरे-धीरे खेमेके पिछले हिस्सेमें आयी। उधरसे बाहर निकलनेका एक रास्ता था, वहां एक नौकर सोया था।

कोयलने उसे पैरसे हिलाया। वह आंखें मलता उठ बैठा। कोयलने कहा—हट जरा।

वह हट गया और कोयलके बाहर निकलते ही फिर लेट गया।

कोयल आगे बढ़ी। धीरे-धीरे वह जनारण्यमें मिल गयी।

बहुत आगे बढ़कर, उसने एक स्वयंसेवकसे पूछा—आर्यसमाजका कैम्प कहां है?

स्वयंसेवकने नम्रतासे कहा—आइये।

कोयल उसके पीछे-पीछे चली......।

——:o:——

स्कन्दपुत्र

[संस्कृत साहित्यमें चौर्य (चोरी) और दस्युता (डाका) का उल्लेख मिलता है। इनकी गणना उपकलाओंमें है। उपकलायें अनेक हैं—४०० का उल्लेख है।

ज्ञात होता है कि चौर्य विद्याके प्रथम आचार्य शिव-पुत्र कार्त्तिकेय हैं। कनकशक्ति, भास्करनन्दी और मूलदेव बादके आचार्य हैं। संस्कृत साहित्यमें मूलदेव प्रसिद्ध है। कादम्बरी, अवन्तिसुन्दरी कथा, कलाविलास आदि ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख है। मूलदेवका ही नाम 'कर्णीसुत' है। इनके 'कर्णीसुत-सूत्र'का उल्लेख मिलता है। यह चौर्य और धूर्त्तताकी शिक्षाका ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ या इसके उद्धरणतक प्राप्त नहीं हैं।

चोरीके कुछ औजारोंका उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। प्रतिशीर्षक (नकली सिर) का उपयोग तो अब भी होता है। पक्के चोर सेंध लगानेके बाद छिद्रमें नकली सिर घुसाते हैं। यदि कोई उसपर प्रहार करता है तो चोर भाग जाते हैं। प्रतिशीर्षक, पुरुष-शीर्षक या प्रतिमुण्ड एक ही वस्तु है।

संधि (सेंध) करनेके कुछ रोचक नियम भी प्राप्त हुए है। दीप बुझानेके लिए एक विशेष प्रकारके कीटका उल्लेख भी है।

स्कन्दपुत्र चोरको कहते हैं। चोरोंके अनेक भेद हैं। कुछ भेद इस कहानीसे व्यक्त होंगे। —लेखक]

काश्मीरमें प्रत्यभिज्ञा दर्शनकी पुष्टि आचार्य अभिनवगुप्तपाद कर रहे थे; उनके शिष्य महाकवि क्षेमेन्द्र अपनी रस-पिच्छिल रचनाओंसे संस्कृत भाषाको धन्य कर रहे थे, जिनकी रसनापर सरस्वती नृत्य करती थी। उसी समयकी और वहींकी बात है।

सूचीभेद्य अन्धकारका साम्राज्य था जो मयूरोंके गलोंमें, कामिनियोंके

कपोलोंकी कस्तूरिकाकी रचनामें एवं केशोंमें तथा मददन्तियोंके शरीरमें गाढ़तम हो गया था। पृथ्वी और आकाशमें जलतत्त्वकी प्रधानता थी। सान्द्रस्निग्ध पयोद-मण्डल, गगन-पादपमें मधु-मक्षिकाओंके विराट् छातेकी तरह लटक रहा था। उसके भारसे दिक्-शाखाएं सिमिट गयी थीं।

उस अन्धकारको चीरते आठ व्यक्ति काश्मीरके उपनगरकी ओर आ रहे थे। मेघोंने मन्द्र-गम्भीर ध्वनि की।

आठोंमेंसे एकने कहा—सोमेन्द्र ! भगवान् पाणिनिने भी क्या कहा है !

गतेर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः।
अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी-गौरिव हुंकरोति॥

(बरसातमें आधी रातको काले मेघ धीरे-धीरे गरजते हैं। (मानों) इन्दु-बिम्ब रूपी बछड़ेको न देखकर गौके समान रात्रि हुंकार करती है।)

सोमेन्द्रने कहा—भगवान् दाक्षी-पुत्र इस श्लोकके बदले मेरे प्राण भी मांगते तो मैं सहर्ष देता।

कल्लटने कहा—रंकुक ! तुम्हारी दृष्टि तीक्ष्ण है। वह सामने क्या है ?

रंकुकने उत्तर दिया—किसीका गृह है।

सोड्ढलने कहा—तो हम उपनगरमें आ पहुंचे ! कुमार कार्त्तिकेयकी जय। आचार्य कर्णीसुतकी जय !

रंकुकने कहा—गृह अति जीर्ण है। भीतर प्रकोष्टमें दीपक जल रहा है। चलो, आगे चलो।

कल्लटने कहा—शान्ति। सुनो, वार्तालाप सुन पड़ रहा है।

गृहके भीतर किसी वामा-कण्ठने कहा—निधान-कलश पश्चिमके पक्षमें भूमिमें तीन हाथ नीचे गाड़ दिया है।

पुरुष-कण्ठ सुन पड़ा—हूं।

वामा-कण्ठने पुनः कहा—दक्षिण कोणमें।

पुरुष-कण्ठने कहा—दीप बुझा दो। निद्रा आ रही है।

इसके बाद दीप बुझ गया।

कल्लट एक ओर चले। उनके साथी उनके पीछे चले। बहुत दूर जानेपर उन्हें एक सरोवर मिला।

रंकुकने कहा—आह!

सोमेन्द्रने पूछा—क्या है?

रंकुकने उत्तर दिया—पैरमें एक कांटा गड़ गया।

कल्लट खड़े हो गये। उन्होंने कहा—कण्टक! क्या कहा, कण्टक!

—हां।

—सोड्ढल! अन्वेषण करो तो! यहां कण्टकवाले कितने पेड़ हैं?

कुछ देर बाद सोड्ढलने कहा—एक। चारों ओर स्निग्ध वृक्ष हैं।

कल्लटने कहा—भास्करनन्दीकी जय। सोमेन्द्र! निधान मिला।

सोमेन्द्र—निधान?

—हां। जलके समीप निष्कण्टक वृक्षोंके मध्य एक कण्टक वृक्ष हो या कण्टक-वृक्षोंके मध्य एक निष्कण्टक वृक्ष हो तो उसके पास ही निधान होता है।

रंकुकने कहा—कनकशक्तिकी जय। अब मुझे कण्टक गड़नेकी व्यथा न रही। और दो-चार गड़ जायं।!

सोमेन्द्रने कहा—तो निकाला जाय?

कल्लटने कहा—अभी नहीं। कदाचित् निधानपर सर्प हो! पहले गणना कर लेना उचित है। इस स्थानको पहचान रखो। हां, रंकुक! तुमने वार्तालाप सुना?

—बहुत ध्यानसे।

—क्या समझे?

—वह स्त्री युवती है, सद्वंश की है, प्रसूता नहीं हुई है, मृदु स्वभावकी है।

कल्लटने पूछा—कारण?

रंकुकने कहा—वह युवती है, क्योंकि स्वरमें हलकापन और मिष्टता है। दीप बुझाने वह उठी तो उठनेकी शीघ्रतासे और चालसे भी यही

लक्षित हुआ। वह सद्वंश की है—आज्ञा पाते ही उठी और अञ्चलसे दीपक बुझाना चाहा। प्रसूता नहीं है, क्योंकि चालमें संकोच है, पैरोंके अग्रभागपर अधिक बोझ देकर चलती है एवं स्वरमें तीक्ष्णता नहीं आयी है। मृदु स्वभाव की है क्योंकि दीप बुझाने जाते समय क्षणभरके लिए रुकी थी—अवश्य ही किसी कीटको बचानेके लिए।

कल्लटने पूछा—और ?

—वह पुरुष उसका पति है।

—कैसे ?

—वह अञ्चलसे दीप बुझाना चाहती थी। बादमें मुखसे बुझाया। अवश्य ही उस पुरुषकी दृष्टि उसके हृदय-स्थलपर निबद्ध थी। इसी लज्जासे उसने झटसे मुखसे बुझाया। इससे यह भी स्पष्ट है कि वह मध्या नायिका है।

कल्लटने कहा—साधु !

सोड्ढलने कहा—वह अत्यन्त सुलक्षणा है। उसकी पदध्वनि बहुत मृदु, स्पष्ट एवं मन्थर है। चलनेमें पैरकी नसें नहीं बोलती। यह सब सौभाग्य-का लक्षण है।

सोमेन्द्रने कहा—पुरुष भी सुपठित, रसिक और समयज्ञ है।

कल्लटने पूछा—कारण ?

—उसका उच्चारण स्पष्ट, कोमल और सन्धि-युक्त है। उसकी वाणीमें न जड़ता थी न अस्पष्टता, न वह जृम्भायुक्त थी। उसे निद्रा न आ रही थी, अतः समयज्ञ भी है। ऐसे सरस समय हमीं जैसे मारे-मारे घूम सकते हैं।

कल्लटने पूछा—उस महिलाका कथन सुना ?

सोमेन्द्रने कहा—निधान गाड़नेकी बात कहती थी।

सर्वने कहा—गृह अत्यन्त जीर्ण है। प्राकार मृत्तिकाका और यत्र-तत्र गिरा हुआ है। ऐसे गृहमें निधान होना सम्भव नहीं है।

द्रंकने कहा—कंथामें रक्तमणि (गुदड़ीमें लाल) प्रसिद्ध है। असम्भव क्या है!

रंकुकने कहा—गृह जीर्ण है, यह अच्छा ही है। हमें सुविधा होगी।

सोमेन्द्रने कहा—तो हमने कर्णीसुत-सूत्रके अनुसार इस गृहका सार (धन), कर्म और शील जान लिया।

द्रंकने कहा—हां। निधान भूमिस्थ है। कर्म यह कि गृहपति सो रहे हैं, शील भी कुछ ज्ञात ही है।

भर्वने कहा—सिद्धिरस्तु। तो चला जाय।

कल्लटने कहा—अभी नहीं। सो जाने दो। गृहपति युवा हैं, कुछ देर रसकी बातें करेंगे। क्यों द्रंक। कल तुम क्षेमेन्द्रके यहां गये थे?

—हां वे 'कला-विकास' लिख रहे हैं। उसके प्रधान वक्ता आचार्य मूलदेव हैं। उसका यह श्लोक मुझे बहुत अच्छा लगा—

नवविसकिसलयकवलनकषायकलहंसकलरवो यत्र।
कमलवनेषु प्रसरति लक्ष्म्या इव नूपुरारवः॥

(नवीन कमलकी नालखानेसे कषाय कण्ठवाले कलहंसोंका कलरव, कमल वनोंमें फैलकर लक्ष्मीके नूपुरोंका रवसा लगता है।)

कई व्यक्ति एक साथ बोले—साधु क्षेमेन्द्र! साधु! सत्य ही तुम्हारी रसनापर सरस्वती नृत्य करती हैं।

द्रंकने कहा—'दर्पदलन' हाल ही में उन्होंने समाप्त किया है। अपूर्व है—

कुलाभिमानं त्यज संवृताग्रं,
धनाभिमानं त्यज दृष्टनष्टम्।
विद्याभिमानं त्यज पण्यरूपं,
रूपाभिमानं त्यज काललेह्यम्॥

(पहलेकी पीढ़ियोंमें क्या दोष था, पता नहीं; अतः कुलका अभिमान न करो। धनका अभिमान न करो, वह देखते-देखते नष्ट हो जाता है। ...

लक्षित हुआ। वह सद्वंश की है—आज्ञा पाते ही उठी और अञ्चलसे दीपक बुझाना चाहा। प्रसूता नहीं है, क्योंकि चालमें संकोच है, पैरोंके अग्रभागपर अधिक बोझ देकर चलती है एवं स्वरमें तीक्ष्णता नही आयी है। मृदु स्वभाव की है क्योंकि दीप बुझाने जाते समय क्षणभरके लिए रुकी थी—अवश्य ही किसी कीटको बचानेके लिए।

कल्लटने पूछा—और?

—वह पुरुष उसका पति है।

—कैसे?

—वह अञ्चलसे दीप बुझाना चाहती थी। बादमें मुखसे बुझाया। अवश्य ही उस पुरुषकी दृष्टि उसके हृदय-स्थलपर निबद्ध थी। इसी लज्जासे उसने झटसे मुखसे बुझाया। इससे यह भी स्पष्ट है कि वह मध्या नायिका है।

कल्लटने कहा—साधु!

मोट्टल्लने कहा—वह अत्यन्त सुलक्षणा है। उसकी पदध्वनि बहुत मृदु, स्पष्ट एवं मन्थर है। चलनेमें पैरकी नसें नहीं बोलतीं। यह सब सौभाग्य-का लक्षण है।

सोमेन्द्रने कहा—पुरुष भी सुपठित, रसिक और समयज्ञ है।

कल्लटने पूछा—कारण?

—उसका उच्चारण स्पष्ट, कोमल और सन्धि-युक्त है। उसकी वाणीमें न जड़ता थी न अस्पष्टता, न वह जृम्भायुक्त थी। उसे निद्रा न आ रही थी, अतः समयज्ञ भी है। ऐसे सरस समय हमीं जैसे मारे-मारे घूम सकते हैं।

कल्लटने पूछा—उस महिलाका वचन सुना?

सोमेन्द्रने कहा—निवास बदलनेकी बात कहती थी।

सर्वने कहा—गृह अत्यन्त जीर्ण है। प्राकार मृत्तिकाका और गवाक्ष गिर रहा है। ऐसे गृहमें निवास होना सम्भव नहीं है।

द्रंकने कहा—कंथामें रत्नमणि (गुदड़ीमें लाल) प्रसिद्ध है। असम्भव क्या है!

रंकुकने कहा—गृह जीर्ण है, यह अच्छा ही है। हमें सुविधा होगी।

सोमेन्द्रने कहा—तो हमने कर्णीसुत-सूत्रके अनुसार इस गृहका सार (धन), कर्म और शील जान लिया।

द्रंकने कहा—हां। निधान भूमिस्थ है। कर्म यह कि गृहपति सो रहे हैं, शील भी कुछ ज्ञात ही है।

भर्वने कहा—सिद्धिरस्तु। तो चला जाय।

कल्लटने कहा—अभी नहीं। सो जाने दो। गृहपति युवा हैं, कुछ देर रसकी बातें करेंगे। क्यों द्रंक। कल तुम क्षेमेन्द्रके यहां गये थे?

—हां वे 'कला-विकास' लिख रहे हैं। उसके प्रधान वक्ता आचार्य मूलदेव हैं। उसका यह श्लोक मुझे बहुत अच्छा लगा—

नवविसकिसलयकवलनकषायकलहंसकलरवो यत्र।
कमलवनेषु प्रसरति लक्ष्म्या इव नूपुरारवः॥

(नवीन कमलकी नालखानेसे कषाय कण्ठवाले कलहंसोंका कलरव, कमल वनोंमें फैलकर लक्ष्मीके नूपुरोंका रवसा लगता है।)

कई व्यक्ति एक साथ बोले—साधु क्षेमेन्द्र! साधु! सत्य ही तुम्हारी रसनापर सरस्वती नृत्य करती हैं।

द्रंकने कहा—'दर्पदलन' हाल ही में उन्होंने समाप्त किया है। अपूर्व है—

कुलाभिमानं त्यज संवृताग्रं,
धनाभिमानं त्यज दृष्टनष्टम्।
विद्याभिमानं त्यज पण्यरूपं,
रूपाभिमानं त्यज काललेह्यम्॥

(पहलेकी पीढ़ियोंमें क्या दोष था, पता नहीं; अतः कुलका अभिमान न करो। धनका अभिमान न करो, वह देखते-देखते नष्ट हो जाता है। उस

विद्याका अभिमान भी न करो, जो पैसेके लिए बेची जाती है। रूपका अभिमान भी न करो, उसे काल चाट लेता है।)

कल्लटने कहा—जिस दिन यहांके कवियोंके समक्ष उन्होंने 'दर्पदलन' सुनाया था; मैं न जा सका था।

द्रंकने कहा—सब कवियोंने कहा, कि ऐसा प्रवाह, ऐसी कल्पना, ऐसी सूक्तियां, इने-गिने कवियोंकी हैं। दूसरे ही दिन उस काव्यकी २५० प्रतिलिपियां देशके विभिन्न कवियों और संस्थाओंको भेजी गयी।

कल्लटने कहा—उनका पुत्र भी सुकवि है। क्षेमेन्द्रने 'बोधिसत्त्वावदान—कल्पलता' का अन्तिम पल्लव उसीसे लिखवाया है।

रंकुकने कहा—ऐसे पुत्र धन्य हैं जिनपर पिता इतना अभिमान और विश्वास कर सकें।

कल्लटने कहा—अब उठो। रंकुक ! तुम प्राचीर पार कर पहले देखो, वे लोग सोये कि नहीं ?

रंकुकने कहा—यह क्या कठिन है। मैं पृथ्वीपर सिंह और सर्प हूं, जलमें नक्र हूं। केवल आकाशगामी नहीं हूं।

सोमेन्द्रने हँसकर कहा—इसीलिए कुबेर अबतक कुबेर है। तुम्हारे पंख होते तो वे पल भरमें दरिद्र हो जाते।

रंकुकने कहा—मेरे लिए वे अब भी दरिद्र ही हैं। किसको क्या दे देते हैं ?

गृहके प्राकारके पास ये लोग रुके। रंकुक छलांग मारकर पार हो हो गया। ५-७ मिनट बाद वह बाहर लौट आया। उसने कहा—श्वास-प्रश्वाससे यही प्रतीति होती है कि दोनों सो गये, पर और परीक्षा कर लेना उचित है। भाग्यसे, आसपास कोई और गृह नहीं है।

गृहसे कुछ दूर हटकर तीन आदमी खड़े हुए। शेष उनके चारों ओर खड़े हुए, कोई दूर, कोई निकट।

सोमेन्द्रने पुरुष-शीर्षक (नकली सिर) सन्धिके भीतर घुसाया।

रंकुकने कहा—इसकी आवश्यकता न थी। कोई जागता थोड़े ही है। प्रवेश करो।

पुरुष-शीर्षक एक ओर रखकर, एक-एक कर सब लोग भीतर घुसे। योगवर्तिका पुनः जलाकर दक्षिण-कोणका खनन प्रारम्भ हुआ।

वृष्टि होने लगी। स्थिर और मोटी धारायें गिरने लगी—मानों मेघों-ने सहारेके लिए छड़ियां टेकी हों।

सोमेन्द्रने कहा—६ हाथ खोद चुके।

कल्लटने कहा—शीघ्र शेष तीनों कोण खोदो।

एक घण्टे बाद सारी फर्श खुदी पड़ी थी। सब एक दूसरेका मुंह देखने लगे। कल्लटने कहा—कुछ समझमें नहीं आता।

सर्व बोला—नागरिक भी बहुत धूर्त हो गये हैं। कदाचित् ये लोग इस तरहकी बातें करके ही सोते हों।

——फल ?

——हम जैसोंको मूर्ख बनाना।

तभी बाहरी प्रकोष्ठमें वामा-कंठने कहा—सुनते हो ! उठो, स्कन्दगुप्त !

भीतरी प्रकोष्ठमें योगवर्तिका बुझ गयी।

पुरुष-कण्ठने कहा—तुम्हें तो व्यर्थ का सन्देह है।

वामा-कण्ठने कहा—है अवश्य।

पुरुष खट्विका (छोटी खाट) से उठा, दीप जलाया और उच्च कण्ठसे कहा—सज्जनो ! मेरी पत्नीका कथन सत्य ही हो तो आप लोग इधर आवें।

निस्तब्धता !

——सज्जनो ! हों तो आवें।

पुरुष दीप लेकर बढ़ा। कल्लट आगे बढ़ा, उसके मित्र पीछे चले। वे लोग इस प्रकोष्ठमें आये तो मालिन एक कोनेमें खड़ी हो गयी।

गृहस्वामीने कहा—स्वागतम् । आइये !

सब लोग कट (चटाई) पर बैठे। कल्लटने देखा—खट्विकाका आस्तरण स्वच्छ होनेपर भी सच्छिद्र है, एक ओर जल-घट रखा है; एक ओर वेष्टनोंमें बँधी पुस्तकें रखी हैं।

गृहस्वामीने कहा—वृष्टि हो रही है, पर आप लोग भीगे नहीं हैं। ज्ञात होता है, देरसे घरमें हैं।

कल्लटने गृहस्वामीके सप्रतिभ मुखकी ओर देखकर कहा—हां। बाहरी प्रकोष्ठका कुट्टिम (फर्श) पूरा खोदा है।

गृहस्वामीने विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

और वह तुरन्त हंस पड़ा। उसने पुनः पूछा—हम लोगोंकी बातें सुनकर ?

भर्वने कल्लटकी ओर देखा।

गृहस्वामीने खट्विकाके नीचेसे एक हस्तलिखित पुस्तक उठाकर कहा—मैं यह कथा लिख रहा था। कल पूर्ण हुई है। वही मेरी पत्नी सुना रही थी। इसीसे आप लोगोंको भ्रम और श्रम हुआ।

कल्लटने सिर झुका लिया।

गृहस्वामीने कहा—भद्र ! मैं एक सप्ताह पूर्व आपके नगरका अतिथि हुआ हूं।

कल्लटका सिर और नीचा हो गया। उन्होंने गृहस्वामीसे पूछा—आपने किस शास्त्रमें श्रम किया है ?

गृहस्वामीने कहा—थोड़ा बहुत सबमें। मैं पद्य लिखता हूं।

कल्लटने साग्रह कहा—कुछ सुनाइयेगा ?

गृहस्वामीने कहा—सानन्द ! कल्याणी !

कल्याणीने एक कापी सामने रख दी।

कविने पढ़ा—

त्वयि जीवति जीवन्ति बलिकर्णदधीचयः।
दारिद्र्यं तु जगद्देव मयि जीवति जीवति ॥

(हे जगद्देव ! हे राजन् ! तुम्हारे जीनेसे बलि, कर्ण और दधीचि जीवित हैं। मेरे जीनेसे दरिद्रता जीवित है)

कल्लटने उठकर कविका आलिंगन किया। शेष लोग साधुवाद देने लगे।

कविने नम्र होकर कहा—कल मैं कविराज रोचकसे मिलने गया था। वे अन्ध हैं। लौटकर मैंने यह लिखा—

एकचक्षुर्विहीनोयं शुक्रोपि कविरुच्यते।
चक्षुर्द्वयविहीनस्य युक्ता ते कविराजता॥

(एक चक्षुसे विहीन शुक्राचार्य कवि कहे जाते हैं। दोनों चक्षुओंसे हीन होनेसे तुम्हारी कविराजता उचित ही है।)

स्कन्दपुत्रोंने पुनः साधुवाद दिया और दोनों पक्षोंकी विशेषताओंका उद्‌घाटन करने लगे। कविने विस्मित होकर पूछा—आप लोग तो महा-पण्डित ज्ञात होते हैं, फिर यह कर्म क्यों ?

कल्लटने कहा—कवि ! ब्राह्मणोंपर सब विद्याओंकी रक्षाका भार है। अब कलायें लुप्त हो रही हैं, उपकलायें लुप्त ही हैं। हमने उन्हें जीवित रखने-का प्रयत्न किया है। हमारा दल इसी कार्यमें संलग्न है। हम पाटच्चर (जूती चोर) नहीं, चिल्लभ (बटमार) नहीं, गान्धर (बन्दी बनाकर छीननेवाले) नहीं। हम अबलाओं और बालकोंको नहीं ठगते, यज्ञके निमित्त संचित धन नहीं लेते, आभूषण नहीं चुराते क्योंकि वह स्त्री-धन है, गौ नहीं चुराते, और चोरीके धनसे ब्राह्मणोंका पालन करते हैं—उसे अपने काममें नहीं लेते।

कविने पूछा—आप लोगोंने किन शास्त्रोंमें श्रम किया है ?

कल्लटने कहा—ये सब लोग सब शास्त्रोंमें निपुण हैं, उत्कृष्ट कवि हैं, नगरके प्रतिष्ठित नागरिक हैं।

सोमेन्द्रने कहा—ये प्रसिद्ध आचार्य कल्लट हैं, जिन्हें देखकर अभि-सारिकायें [illegible]।

कविने कल्लटको हृदयसे लगाया और कहा—मैं धन्य हुआ। मुझे खेद है, कि मेरे यहां आपको कुछ न मिला।

कल्लट बोले—यह कला आज धन्य हुई, जिसके कारण आप जैसे समर्थ कविका दर्शन हुआ।

कविने कहा—कल्याणी! इन महापुरुषोंका कुछ सत्कार करोगी?

सोमेन्द्रने कहा—क्षुधा लगी है।

कल्याणीने कहा—हां।

कवि प्रसन्न होकर उठे, पत्नीके पास गये और पुनः आकर बैठ गये। उनके नेत्रोंसे जल गिरने लगा।

कल्लटने उनकी ओर देखा।

कवि बोले—आज खानेको कुछ न था। हम लोग जल पी कर सोये। पत्नीने अभी 'हां' कहा तो मैंने सोचा कि स्वयं न खाकर अभ्यागतोंके लिए रखा है। पास जाकर देखा कि वह रो रही है, अश्रुओंसे 'ना' कह रही है। बन्धुओं! ये अश्रु सहे नहीं जाते। हा!

श्रोताओंके नेत्र भर आये।

कविने कहा—यही कथा लेकर कल महाराज अनन्तदेवकी सभामें जानेवाला हूं।

कल्लटने कहा—कवि। कलम और मसी दोगे?

कल्याणीने दोनों चीजें लाकर सामने रखीं। कल्लट एक भूर्जपत्र पर गणना करने लगे। कवि विस्मित होकर देखने लगे। सहसा कल्लटने हृष्ट होकर कहा—मिली, मिली!

कविने और भी विस्मित होकर पूछा—क्या?

कल्लटने कहा—पास ही के सरोवरके तटपर एक वृक्षके नीचे निधि है। गणनासे ज्ञात हुआ, कि एक लक्ष से अधिक स्वर्ण-मुद्रायें हैं और वे निरुपद्रव हैं। कवि! हम लोग अभी आते हैं।

एक घण्टे बाद सब स्कंदपुत्र पुनः आये। वे लोग वस्त्रोंमें स्वर्ण-मुद्रायें बांधे हुए थे। सबने सब कविके सामने रख दीं।

कल्लटने कहा—कवि! हमपर आप प्रसन्न हों, तो इन्हें स्वीकार कीजिये।

कविने कुछ देर सोचा तब दो मुट्ठी स्वर्ण-मुद्रायें उठाकर कहा—यह पर्याप्त है। और लेनेके लिए आग्रह न कीजियेगा।

कल्लटने दृढ़ वाणी सुनकर कहा—आप महाराजकी सभामें न जाइयेगा। दो दिनों बाद वे स्वयं बुलावेंगे।

कवि विह्वल-से देखते रहे।

कल्लटने कहा—देवि! प्रणाम स्वीकार करें।

शेष स्कन्दपुत्रोंने भी प्रणाम किया।

कल्याणीने रुद्ध कण्ठसे कहा—ईश्वर आपका मंगल करें। आप लोगोंकी कृपासे मेरे पतिकी वाणी महाराजकी सभामें वेश्या बननेसे बच गई।

———:०:———

रहमानकी फाँसी

रहमान बीच नदीमें तैरता जा रहा था। नदीके दोनों किनारोंपर पुलिसके सिपाही दौड़ रहे थे—उनमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी और 'टामी' भी। पीछे एक नाव तेजीसे खेयी जा रही थी। उस पर कुछ अफसर थे, कुछ सिपाही भी।

तट और नावके लोगोंको रहमानको पकड़ना था, जीवित ही। और यह न हो सके तो उसकी लाश ही सही।

नाव तेजीसे बढ़ रही थी, तटोंपर सिपाही दौड़ रहे थे।

रहमान तैर रहा था।

:o: :o: :o:

हिन्दीके अखबारोंमें अनुवाद करनेका पैसा पानेवाले—अर्थात् 'सहायक सम्पादक'—विलायती एजेंसीसे प्राप्त एक समाचारका, बीड़ी पीते-पीते, अनुवाद कर रहे थे। यह उनकी प्रतिभा थी कि अंग्रेजीकी एक ही शब्दावलीके पचासों तरहके अनुवाद उन्होंने किये।

उनमेंसे एक अनुवाद यह है—

२३ वरसके नवयुवकका साहस नौजवानका खून-कार्य...के जजका बलिदान

....,१३ अगस्त। भोर आठ बजे कालेजके विद्यार्थी श्री अब्दुल रहमानने, जो बिलकुल नौजवान और २२ वरसके हैं,...के जज श्री जी० के० वेंटवर्थका खून कर डाला। यह कार्य उस समय हुआ जब श्री वेंटवर्थ दो माहकी छुट्टीपर थे और....नदी, जहाजसे पार करनेके लिए, उसपर आरूढ़ हुए थे। अभियुक्त भी उसी जहाजपर था। उसने पिस्तौलकी तीन गोलियां श्री वेंटवर्थके कलेजेमें धँसा दी और देखते-देखते नदीमें कूदकर चम्पत हो गया।

...पुलिस छानबीन कर रही है।

:o: :o: :o:

शामतक सूरजसिंह न लौटा तो रहमानने जेबसे एक बन्द लिफाफा निकाला। उसपर लिखा था—'रहमान ! शामतक न लौटूं तो यह पत्र पढ़ना।'

रहमानने पत्र खोलकर पढ़ना शुरू किया—

'रहमान ! तुम्हारी और मेरी दोस्ती ६ बरसोंकी है। तुम्हारी शायद सब बातें मुझे मालूम हैं, पर मेरी कुछ बातें तुम्हें नहीं मालूम हैं। मैंने तुम्हें नहीं बतलायी थीं।

सन् ५७ के गदरमें भारतको स्वतन्त्र करनेकी चेष्टा करनेवालोंमें मेरे दादा भी थे।...वे पकड़े गये और उन्हें इलाहाबादमें एक नीमके पेड़पर लटकाकर फांसी दी गयी।...उनके तीन पुत्र वहीं तोपके मुंहपर बांधकर उड़ा दिये गये। उनके अन्तिम पुत्र अर्थात् मेरे पिता, उस समय अपनी मांकी गोदमें थे। वे उन्हें लेकर निकल भागीं। उन्होंने मेरे पिताको शिक्षा दी—अपने पिता और भाइयोंकी हत्याका प्रतिशोध लेनेकी शिक्षा।...

बड़े होनेपर मेरे पिताने जनतामें अंग्रेजोंके विरुद्ध प्रचार प्रारम्भ किया। वे एक-एक जगह बहुत दिनों रहते थे, क्योंकि लोगोंके विचार धीरे-धीरे बदलते थे।...इसी यात्रामें उन्हें एक परिवार मिला—एक मां और उसकी बेटी। यह परिवार अंग्रेजी कानूनका सताया हुआ था,—उसकी सम्पत्ति जब्त हो चुकी थी, परिवारके मुखिया [illegible] [illegible] की जा चुकी थी।

मेरे पिताने इस परिवारकी पुत्रीसे विवाह किया। मेरे पिताको, मेरी मांको उचित शिक्षा न देनी पड़ी होगी।...

मेरे पिता [illegible] [illegible] लोगोंको [illegible], दल बनाने और उन्हें [illegible] करने तथा क्रान्तिकारियोंसे एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया।

इन घटनाओंका विशद चित्र मेरी मांने मेरी आंखोंके सामने रखा। मुझे उस जजको भी दिखलाया, जिसने मेरे पिताको फांसीकी सजा दी थी—उसका नाम ग्रेटहार्ट है।

ग्रेटहार्ट छुट्टीपर है, वह कल शिकार खेलने जायगा।...मैं भी जा रहा हूं—शिकार करने।

ये बातें मैंने तुम्हें न बतलायी थीं। तुम्हें इस बारेमें कुछ न करना था—सब मुझे ही करना था, मैं ही करूंगा।

मेरी मांसे कह देना। न कह सको तो हर्ज नहीं। उसे मालूम हो जायगा।

तुमसे इतना ही चाहता हूं कि चुप रहना।

तुम पुनर्जन्म नहीं मानते। बहुतेरे हिन्दू भी नहीं मानते। मैं मानता हूं। फिर भेंट होगी। —'सूरज'

पत्र पढ़कर रहमानने उसे दियासलाईके हवाले किया और सिरपर हाथ रखकर बैठ रहा।

तब उसने सूरजसिंहके सामानकी तलाशी शुरू की। सूरजसिंह और रहमान होस्टलमें रहते थे और दोनों 'पार्टनर' थे। दोनों एक दूसरेको 'वर्दी पार्टनर' कहकर पुकारा करते थे।

रहमानको अपने 'वर्दी पार्टनर' के सामानमें एक भी आपत्तिजनक वस्तु न मिली। तब उसने अपने सामानकी तलाशी ली। 'वर्दी पार्टनर' के कुछ पत्र थे, उन्हें जला दिया। ट्रंकमें एक नीले फीतेमें बँधे कुछ पत्र थे—उस लड़कीके, जिससे वह (रहमान) शादी करना चाहता था। रहमानने उन्हें एक बड़े लिफाफेमें रखा, उसे बन्द किया और उसपर लिखा—'मिस खातून के लिए।' इसके बाद उसने एक सूची बनायी, किन्हें क्या देना और लौटा देना है। इसके बाद वह बाहर निकला....।

:o: :o: :o:

दूसरे दिन १० बजे रहमान योग्य सम्पादकोंके अनुवादका वह अंश

पढ़ रहा था, जिसमें सूरजसिंहकी 'अपूर्व हिम्मत' का वर्णन था और उसकी 'रंगे हाथों,' गिरफ्तारीका वर्णन भी।

उसी समय पुलिसका एक दल वहां आया। रहमानकी शिनाख्त हुई उसे गिरफ्तार किया गया और उसके कमरेकी तलाशी शुरू हुई। वह सूरज-सिंहका 'पार्टनर' और मित्र था।

:o: :o: :o:

२१ वें दिन शामको रहमान छोड़ दिया गया। सरकारने उसे निरपराध पाया था।...उसी दिन प्रातःकाल सूरज सिंहको फांसी हो चुकी थी। उसका बयान नहीं छपा, पर यह छपा था कि उसने 'अपराध कबूल कर लिया।'

सूरजसिंहको फांसीकी सजा देनेवाले जजका नाम था—जी० के० वेण्टवर्थ।

रहमान मनमें कहता रहा—वेण्टवर्थ, वेण्टवर्थ, जी० के० वेण्टवर्थ ..।

इसके दो मास बाद रहमानने जो कुछ किया, वह सुयोग्य अनुवादकोंकी कृपासे ज्ञात हो चुका है।

:o: :o: :o:

रहमान तैर रहा था, नाव पास आती जा रही थी। ..नाव एक दम पास आ गयी। रहमानने डुबकी लगायी, उसके सिरपर नावका भाग [illegible] [illegible] भी पानीके भीतर चला गया।

रहमान बहुत दूरपर निकला, पर नाव पीछे ही थी—उसने फिर डुबकी लगायी। इस बार वह पानीसे दूरपर उभरा...

:o: :o: :o:

रहमानने डुबकी लगायी, नाव उसके ऊपरसे आगे बढ़ी। उसने नावके पिछले [illegible] [illegible] [illegible] नावके [illegible] हाथ रखा और बिना [illegible], नावके साथ [illegible] [illegible]।

नावमें [illegible] [illegible] [illegible] थे, [illegible] साथ गिरे और उठे थे। 'साहब [illegible]

आवाजसे ज्ञात होता था कि डांड़ोंवाले हाथ पूरे फैलते हैं और मुड़ते हुए खेनेवालोंके सीनोंसे जा लगते हैं।

नदीका मोड़ आया। वहां सेवार बहुत अधिक था। रहमानने सिर नीचा किया और उसीके भीतर जा रहा। नाव आगे चली गयी। रहमानने सेवार जरा हटाकर देखा, आगे जाकर नाव एक किनारे लगी और वहांके सिपाहियों-को ले लिया। दूसरे तटके सिपाहियोंको खोजते हुए, वापस लौटना आदेश मिला।...रहमान सेवार पकड़े उसीमें अटका रहा।

नाव आगे बढ़ी, सिपाही वापस चले। नावके आंखोंसे ओझल हो जानेपर ये सिपाही बैठकर सुस्ताने लगे। रहमान शान्त रहा। घण्टेभर बाद सिपाही चले गये।

रहमान किसी तरह निकलकर बाहर आया और किनारे पहुंचा। उसका सिर पीछेसे फट गया था। अब खून बहना बन्द हो गया था। रहमान थक गया था, उसे चक्कर आ रहे थे। वह किनारेके एक घने पेड़पर चढ़कर, पत्तियोंमें छिपकर बैठ रहा।

शाम झुक आयी। अंधेरा बढ़ने लगा। नदीका मटमैला पानी काला देख पड़ने लगा। दूरके पेड़ोंकी डालें एक दूसरीमें मिल गयीं, पत्तियां न देख पड़ने लगीं...आसपासके पेड़ पृथक् न रहे—एकसे हो गये, एक काला मण्डल देख पड़ने लगा। थोड़ी देर बाद वह मण्डल भी गायब हो गया...अन्धकार अन्धकार! मेंढक लम्बे-लम्बे आलाप करने लगे, कुछ पेड़ोंपर नीचेसे ऊपर तक जुगनू देख पड़ने लगे—लाखों, मानों ज्योति-वृक्ष हों।

डांडोंका छप-छप शब्द सुन पड़ने लगा। रहमान सांस रोककर बैठ रहा। उसका पीछा करनेवाली नाव वापस आ रही थी। पानीपरसे दौड़ती शब्द तरंग उसके कानोंपर आघात करने लगी—'वह जरूर डूब गया, या कोई मगर खींच ले गया। सुबहसे शामतक कोई तैर नहीं सकता।'

किसीने कहा—'हुजूर! मैंने भी जो कुन्दा तौलकर मारा था! पानी पर खून दिखाई पड़ा था। उसके बाद वह पानी पीकर डूब गया होगा।'

१८ दिनोंके बाद रहमानने अदालतमें यह बयान दिया—

'मैंने वेंटवर्थकी हत्या की, जानबूझकर और होश-हवासमें। सूरजसिंह मेरा दोस्त था, पर यह उसकी फांसीका बदला न था। जो सरकार और उसके अफसर इन्साफकी तहतक नहीं जाते, सिर्फ अपना दबदबा कायम रखनेके लिए लोगोंको फांसी देते हैं, वह सरकार और उसके अफसर रहने देनेके काबिल नहीं हैं। सूरजसिंहने क्यों खून किया? क्या सरकार या या जज इसकी तहतक पहुंचे? हरगिज नहीं। फांसी सिर्फ इसलिए हुई कि सूरजसिंहने खून किया था।...ऐसे जालिमोंको मिटा देना इन्साफ-पसन्दों-का फर्ज है। मैंने वही किया। अगर २-४ सौ आदमी भी मेरा रास्ता अख्तियार करें तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। जालिमोंकी अक्ल इससे ठिकाने आ जायगी।...

दूसरे दिन अखबारोंमें (बयान तो न छपा, पर) यह छपा—

'रहमानका अपराधोंका कबूलीकरण फांसी ११ नवम्बरको।

......२ नवम्बर।......'